वैवस्वत मनु और श्रद्धा

Vaivaswat Manu-aur-Shraddh

(आदि सृष्टि के समय का एक मौलिक उपन्यास)

by

M.R. Anand.

(Novel)

Price 3/4/-

Pages - 215

Mulk Raj Anand

— पं० मुलकराज शर्म्मा आनन्द

प्रकाशक

पं० मुलकराज शर्म्मा आनन्द

'शर्म्मा साहित्य भण्डार' कार्यालय,

देहली।

भूतपूर्व—दि नौवलिस्ट एजेंसी,

कृष्णनगर, लाहौर।

मुद्रक

बालकृष्ण, एम० ए०,

युगान्तर प्रेस, मोरी गेट,

देहली।

"शत वर्ष पर्य्यन्त, प्रस्युत इससे भी अधिक काल तक, पृथ्वी पर शुष्कता और अकाल का चक्र रहेगा। फिर सूर्य की सप्त ध्वंसकारी किरणें चहुं ओर अग्नि फैंकेंगीं। युगान्त में बड़वानल भड़क उठेगी। पाताल से शेषनाग के मुख से विष भरी अग्नि की ज्वालाएं निकलेंगी। महादेव के मस्तिष्क से, उनके तृतीय नेत्र से, अग्नि भड़कती हुई दीखेगी। जगत् अग्नि में झुलस कर राख हो जायेगा। आकाश उष्णता से जल उठेगा। संसार देवताओं और तारिकाओं के साथ नष्ट हो जायेगा। प्रलय काल के मेघ अग्नि नद से निकल कर विप्लव उत्पन्न करेंगे। सागरों में हलचल मचेगी। वह परस्पर मिल जायेंगे और त्रिलोकी सागर-रूप हो जायगी। इस प्रकार मनवान्तर का अन्त होगा।"

— मत्स्य पुराण

वैवस्वत मनु और श्रद्धा

प्राक्कथन

विषय, जिस पर यह कथा लिखी गई है, उर्दू हिन्दी के लिये नितान्त नवीन है; इसलिये कहा नहीं जा सकता कि पाठक इसे किस दृष्टि से देखेंगे। परन्तु मुझे इसकी तैयारी में जो परिश्रम करना पड़ा है वह इससे कहीं अधिक है जो इसके पाठकों की दृष्टि के सन्मुख आयेगा। परन्तु यह प्रेम-परिश्रम है और मुझे हर्ष है कि जो विचार वर्षों से मन में चक्कर लगा रहा था पुस्तकाकार में परिणत हो गया। इसे लिपि-बद्ध करने के लिये जितने परिश्रम और अनुसन्धान की आवश्यकता थी उसके लिये मेरे जैसे कार्य-निमग्न व्यक्ति के लिये समय निकालना सुगम न था। परन्तु जब ईश्वर-इच्छा हुई तो सब साधन जुट गये और वह व्यक्ति, जिसके पास 'मरने के लिये भी समय' न था, इच्छानुसार कार्य करने के लिये स्वतन्त्र हो गया।

आर्य लोगों के योरुप, अफ्रीका, अमरीका और एशिया को बसाने की कथा को काग़ज़ के कुछ पन्नों पर लिखकर समाप्त करना हँसी की बात होगी, क्योंकि अकेले भारत और ईरान की बस्तियों के सम्बन्ध में ही कई पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। परन्तु विस्तृत कथा को पाठक रुचिकर नहीं समझते—विशेष कर आधुनिक युग में जो सिनेमा और फिल्म का युग है जबकि मनुष्य फिल्म पट पर तीन साढ़े तीन घण्टे में किसी नायक के जीवन भर की

घटनाओं से परिचय प्राप्त कर लेते हैं। इस लिये संक्षेप को दृष्टि के सामने रक्खा गया है। यही कारण है कि विषय के विशाल होते हुये भी पुस्तक के पन्ने इतने अधिक नहीं हैं।

: २ :

सन् १९२२ में अमेरिकन म्यूजियम आफ नैचुरल हिस्ट्री (American Museum of Natural History) और ऐशिया मैगजीन, अमरीका (Asia Magazine, America) के प्रयत्न से मंगोलिया और गोबी मरुस्थलों में एक मुहिम भेजी गई थी जिसका उद्देश्य इस विषय में अन्वेषण करना था कि जन्तु-जीवन का प्राचीनतम स्रोत कहां था। अन्वेषक मण्डल के नायक राय चैपमैन ऐण्ड्रूज (Roy Chapman Andrews) थे। उनकी सहायता के लिये भूगर्भ विद्या (Geology), आरक्योलोजी (Archaeology), पशु विद्या (Biology), बूटी विद्या (Botany) और अन्य अनेक विद्याओं के धुरन्धर विद्वान जो अमेरिका में मिल सकते थे भेजे गये थे। इन अन्वेषकों के परिश्रम का परिणाम उनके नेता की पुस्तक "औन दी ट्रेल आफ ऐनशिएन्ट मैन" (On the Trail of Ancient Man) में लिखा है, जो भयानक घटनाओं के अतिरिक्त विस्मय-जनक खोजों से भरपूर है। इस पुस्तक के अध्याय १६ में लेखक ने एक छोटी सी मनोरंजक कथा लिखी है जिसे स्यात उसी के शब्दों में पढ़ना ठीक रहेगा।

उसने लिखा है :—

: ३ :

"तीस लाख वर्ष बीते, यह पृथ्वी वृद्धा हो चुकी थी। पर इसके भीतर जीवन युवा था। उस समय अद्भुत दुखान्त नाटक खेले जाते थे जैसे कि आज भी कई स्थानों पर खेले जा रहे हैं। उन नाटकों की कथाएं पाषाण रूपी पटों पर लिखी पड़ी हैं और जिन्हें परमात्मा ने पढ़ने की शक्ति दी है वे अब भी उनका अध्ययन कर सकते हैं। हमने गोबी स्थल के वाताहत, शून्य स्थानों में चट्टानों पर लिखी हुई एक ऐसी ही कथा पढ़ी है जिसका वर्णन यूं है :—

मंगोलिया देश में ग्रीष्म काल की प्रात थी और उस प्रदेश का, प्रदेश का ही नहीं, संसार का सबसे बड़ा जीव रस-युक्त पत्तों से पेट भर कर एक विस्तृत स्थल में खड़ा था। उसकी टांगें किसी मन्दिर के खम्बों जैसी थीं और शरीर जीवित मांस के श्वास लेते हुए पर्वत की न्याईं। भगवान अंशुमाली आकाश में देदीप्यमान थे और उस जीव की इच्छा थी कि पेट भर कर जल पान के पश्चात् मध्याह्न की घड़ियां किसी छाया में सो कर व्यतीत करे।

सामने दूरी पर किसी आधी शुष्क नदी का जल चमक रहा था जिसकी ओर यह भयंकर जीव अपने भारी शरीर को उठाये धीरे २ बढ़ने लगा और नदी के निकट पहुंच कर एक जोहड़ में जल-पान को झुका। परन्तु अभी उसके अगले पांव जोहड़ के किनारे की काई पर टिके ही थे कि वह गड़ाप से नीचे कीचड़ में धंस गये। पशु ने बड़े जोर से उन्हें ऊपर निकालने की चेष्टा की, परन्तु उन्हें दूसरे स्थान पर टिकाने का यत्न उसे और भी गहरे

कीचड़ में ले गया। अब उसकी चारों टांगें कीचड़ में धंसी जा रही थीं और वह विवशता से चिल्लाता हुआ मृत्यु के अथाह सागर में उतरता जा रहा था। स्वर्णिम कीचड़ उसके वक्ष, कन्धों और फिर पीठ तक पहुंच गया। अब केवल उसका भारी शीश बाहर था जिसमें रक्तिम नेत्र चारों ओर दृष्टिपात करते हुये दीख पड़ते थे।

अल्प काल पश्चात् वह शीश भी गढ़ाप के साथ गुम हो गया। अब कीचड़ के ऊपर तैरता हुआ जल नये शिकार की प्रतीक्षा कर रहा था।

❀ ❀ ❀

यह कथा थी जिसे हमने मंगोलिया के इस भयानक जीव के रेत में लुप्त होने के तीस लाख वर्ष पश्चात् १९२५ के जून मास में एक दिन पढ़ा।

हम मोटरकारों में उस स्थान पर पहुंचे थे और हमारे शिविर उस अज्ञात समाधि के निकट ही लग रहे थे। २० मील दूर हिमाच्छादित पर्वत का रुपहला शिखर चमक रहा था। उसके चरणों में नील सरोवर था। सामने वज्री से भरे मैदान में, जो उत्तर में लावे से ढके हुये पर्वतों तक पीले फर्श की भांति चला गया था, लाल और मटियाली खड्डें दिखाई दे रहीं थीं। यह सब कुछ उस समय नहीं था जब वह भयंकर जीव इस मृत्यु रूपी जोहड़ में से अन्तिम जल बिन्दु पीने के लिये बढ़ा चला जा रहा था, क्योंकि उस समय से उसकी समाधि पर कई पहाड़ियां उत्पन्न हो २ कर

नष्ट हो चुकी थी और हरे भरे क्षेत्रों का स्थान गोबी के मरुस्थलों ने ले लिया था।

इस अन्वेषण का श्रेय हमारे एक चीनी कार्यकर्त्ता लियू नामी के सिर पर था जिसने एक ऊंची पहाड़ी के एक ओर लाल रेत में चमकती हुई एक श्वेत हड्डी को भांप कर और थोड़ा सा खोदकर ग्रैंगर (Granger) साहिब को उसकी सूचना दी। ग्रैंगर साहिब ने खुदवाई को पूर्ण करवाया तो यह देख कर आश्चर्य से चकित रह गये कि वह बलूचीथीरियम (Baluchitherium)❀ के पांव और टांग की निचली हड्डी थी, जो ऐसी सीधी खड़ी थी मानो पशु आगे बढ़ता हुआ उसे उदासीनता से पीछे छोड़ गया है।

पाषाण हुई अस्थियां पहले कभी इस रूप में नहीं मिलीं। ग्रैंगर साहिब उस के कारणों को सोचने लगे तो उनके मस्तिष्क ने इस समस्या का हल कीचड़ ही बताया।

यह अस्थी दाएं ओर की पिछली टांग की थी इसलिये उसी ओर की अगली टांग कोई तीन गज की दूरी पर होनी चाहिये। यह सोच कर खुदाई प्रारम्भ की गई, और भगवान् की लीला! ठीक उसी स्थान पर एक भारी अस्थी किसी पाषाण हुए वृक्ष के तने की भांति सीधी खड़ी थी। अब बाएं ओर के पाओं और

❀ इस जीव का एक ढांचा बिलोचिस्तान में मिला था इसलिए इसे यह नाम दिया गया। इसका अर्थ 'बिलोचिस्तान का जीव' है।

टांगों को पा लेना बाललीला के समान था, क्योंकि कथा का सारा चित्रपट दृष्टि के सन्मुख था।

जिस समय चारों अंगों को गढ्ढे से खोदकर निकाला गया तो अद्भुत विस्मय का साम्राज्य था। मैं पर्वत-शिखर पर बैठकर उस दृश्य की कल्पना करने लगा जब वह दुखान्त नाटक खेला गया था जिसे यह भारी ठूंठ मूक वाणी से बता रहा था।

स्पष्ट था कि वह भयंकर जीव अगली टांगों को कीचड़ से निकालने का यत्न करता हुआ अपने नितम्बों पर बैठ गया और शायद अति शीघ्र ही कीचड़ की तह में चला गया क्योंकि यदि वह आधा दबता और क्षुधातुर होकर प्राण देता तो उसका शरीर सीधा खड़े रहने के स्थान में एक ओर गिरता। भूगर्भ विद्या के विद्वानों ने पृथ्वी की जांच कर के बताया कि अलताई (Altai) पर्वत के पृथ्वी पर खड़े होने से पहिले वहां क्या अवस्था थी और दबी हुई पाषाण हुई काष्ठ को देखकर डा० राल्फ डब्ल्यू० चैनी साहिब (Dr. Ralph W. Chenny) ने उस समय के जलवायु और उपज का पता दिया। इस प्रकार नाटक का पृष्ठ-दृश्य पूर्ण हो गया।

प्रश्न उत्पन्न हुआ कि हमें सम्पूर्ण खड़ा पिंजर क्यों न मिला। निःसन्देह उसे देख कर संसार विस्मित हो उठता। मैंने ग्रेंगर साहिब से कहा "वाल्टर! यह क्या बात है कि हमें केवल टांगें ही दिखा रहे हो, शेष शरीर को क्यों नही उत्पन्न करते?"

ग्रेंगर—पहाड़ी के ऋतु आघात से नष्ट भ्रष्ट होने से पैंतीस सहस्र वर्ष पूर्व आप हमें यहां क्यों न लाये?

यह सत्य ही था; हमने इतने समय के पश्चात् आने के कारण उस अवसर को खो दिया क्योंकि पिंजर पर उत्पन्न चट्टान ऋतु आघात से बह गई और इसी कारण वह पिंजर भी नष्ट भ्रष्ट होकर नीचे घाटी में चला गया। उसके कई टुकड़े हमें पीछे से मिल भी गये।"

यह जीव, जिसके घोड़े जैसे सुम और शूकर जैसा शरीर था इन दोनों से अधिक गैंडे से मिलता जुलता था, आज पृथ्वी पर नहीं मिलता। उसका आकार कन्धों तक तेरह फुट से कम नहीं था और वृक्षों के पत्ते तोड़ते समय सत्तरह, अठारह फुट तक पहुंच जाता था। उसकी ग्रीवा घोड़े की ग्रीवा की भान्ति लम्बी हुआ करती थी। सिर भारी और बोझल था, कन्धे ऊँचे थे। सिर के बाहर हस्ती की भान्ति दो दांत उसकी रक्षा के लिये शस्त्रों का काम देते थे। इसी प्रकार का एक और गैंडे की जाति का जीव एलास्मोथीर (Elasmothere) हुआ करता था। उसके एक सींग हुआ करता था। विलोचिथीरियम पूर्वी मंगोलिया, तुर्किस्तान और बिलोचिस्तान तक साधारणतया पाये जाते थे।

विलोचिथीरियम के पांव की बनावट पर विवाद करते हुये हेनरी फेयरफील्ड ऑसवर्न (Henry Fairfield Osborne) साहिब, प्रेसीडेन्ट, अमेरिकन म्यूजियम ऑफ नैचुरल हिस्ट्री लिखते हैं कि वह न तो हाथी के समान चौड़े और थैली-जैसे थे और न ही आधुनिक काल के गैंडे जैसे, बल्कि घोड़े के सुमों की भान्ति हुआ करते थे। यह इस बात का चिह्न था कि उस समस्त प्रदेश

में, जहां यह जीव साधारणतया पाये जाते थे, जलवायु दक्षिणी समशीतोष्ण-कटिबद्ध की रही होगी, न कि उष्ण-कटिबद्ध की। यहां पर घने जङ्गल नहीं होंगे बल्कि प्रदेश कुछ खुला होगा। इन प्रदेशों की हरियाली जगतके जीव जन्तुओं के लिए एक मनोरंजक स्थान होगा।

: ४ :

विलोचीथीरियम के अतिरिक्त इन विद्वानों की एक और प्रसिद्ध खोज एक प्रकार के रींगने वाले जीव का पिंजर था जिसे प्रोटासीरोटोप (Protacerotop) का नाम दिया गया है। इस विद्या के विद्वान इसे तृस्रातोप अर्थात् तीन सींग वाले डिनोसौर (Dinosaur) का पिता बताते हैं। यह छिपकली की प्रकार का एक वड़ा भारी जीव था। भूगर्भ-विद्या-वेत्ताओं का कथन है कि जब उत्तरी अमरीका का राकी पर्वत और योरुप का पश्चिमी भाग अभी सागर में डुबकियां लगाता, और कभी ऊपर उठता, कभी नीचे दवता था, उस समय मध्य ऐशिया का द्वीप सागर से ऊपर उपस्थित था और उस पर वह सामग्री विद्यमान थी जो रींगने वाले जीवों की उत्पत्ति और वढ़ती के अनुकूल थी। इस टुकड़ी का एक और विस्मय-जनक अन्वेषण किसी प्राचीन मनुष्य जाति के पाषाण के शस्त्रों और औजारों का था जो कभी गोबी के स्थल में, जवकि उसका जलवायु आज कल से वहुत भिन्न था, रहती रही थी। पुरातत्व-वेत्ताओं (Archaeologist) का विचार था कि यह सहस्रों वर्ष पूर्व यहां रहे होंगे। अभी तक यह कहना कठिन है कि यह प्राचीन जाति, जिसे उन विद्वानों ने (Dunc-

Dwellers) 'डून ड्वैलर्स' कहा है, पीछे किस ओर चली गई।

: ५ :

उपरोक्त कथा को लिखने का तात्पर्य्य केवल यह है कि यह सर्व सम्मति से माना गया है कि एशिया न केवल मनुष्य के जीवन बल्कि पशु, पत्ती आदि की उत्पत्ति का भी प्रथम स्थान है। विद्वान् एक मत होकर यह मान रहे हैं कि माता अदिति का यही भाग था जो जल-तल से निकल कर सर्व प्रथम उस पर तैरा। प्रकृति की इस प्रिय पुत्री ने अपनी उत्पादक शक्ति को प्रगट करते हुये न केवल रींगने वाले महान जन्तुओं को जन्म दिया (जिन्हें भारत के प्राचीन विद्वानों ने 'सर्प' और 'नागों' का नाम दिया), प्रत्युत बिलोचिथीरियम (जिसका हमारे विचार में प्राचीन भारतीय नाम वाराह है), मैमथ (Mammoth) (ऐरावत) और मस्टोडन (Mastodon) जैसे भयंकर जीव भी अपने वक्ष पर घूमने के लिये उत्पन्न किये। न केवल यही, प्रत्युत आज से करोड़ों वर्ष पूर्व मानव को भी अपने किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये जीवन दे कर दो टांगों पर चलने फिरने के लिये छोड़ दिया।

अमरीकन विद्वानों का मत है कि प्रारम्भिक सृष्टि शीत रक्त वाले और अंडज जीवों के रूप में उत्पन्न हुई जिसे कोई दो करोड़ वर्ष का समय व्यतीत हुआ है। फिर रींगने वाले प्राणियों का समय आया जो एक करोड़ से डेढ़ करोड़ वर्ष पहिले का था फिर दुग्ध पिलाने वाले पशुओं का काल आया जिसमें सबसे अन्त में मनुष्य की उत्पत्ति हुई। यह सब एशिया के पर्वतों और उपत्यकाओं पर हुआ।
मिलाइये इससे अपने यहां के मच्छ, कच्छ, वाराह अवतारों की कथायें।

: ६ :

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी जगद्विख्यात पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में मनुष्य जीवन की उत्पत्ति का स्थान त्रिविष्टप बतलाया है जिसका साधारण भाषा में अनुवाद तिब्बत किया गया है, पर कौन जाने जिस समय जीवन का प्रकाश हुवा उस समय तिब्बत मंगोलिया और मध्य एशिया के स्थलों में कोई सीमा थी या नहीं।

संस्कृत के इस प्रकाण्ड पंडित ने इसी पुस्तक में यह विचार भी दिया है कि त्रिविष्टप में सृष्टि उत्पत्ति के पश्चात जगदजननी के पुत्र "आर्य्य" और "दस्यु" दो नामों में बंट गये। भले लोग आर्य या देव कहलाये और डाकू चोर आदि बुरे लोग दस्यु के नाम से पुकारे गये। फिर त्रिविष्टप से चलकर लोग आर्यावर्त में आये। उस समय यह देश खाली पड़ा था।

कुछ ऐसा ही विचार पारजिटर साहिब (Pargiter) का है। इस के विरुद्ध अनेक विद्वान मध्य एशिया को प्राचीन आर्यों का गृह बताते हैं। हमें इन दोनों विचारों में कोई विशेष अन्तर नहीं दीख पड़ता, क्योंकि तिब्बत मध्य एशिया का ही एक भाग कहा जा सकता है। और पामीर की उपत्यका जगत की छत के नाम से प्रसिद्ध है ही।

दूसरी ओर कुछ ऐसे विद्वान भी हैं जो आस्ट्रिया और हंगरी को आर्य लोगों का जन्म-स्थान बताते हैं।

सन् १६०३ में दक्षिण भारत के प्रसिद्ध अन्वेषक प० बाल-गंगाधर तिलक ने (जिन का नाम उनकी राजनैतिक सेवाओं के लिये ही नहीं, प्रत्युत साहित्यिक देन के लिये भी भारत के इतिहास में विशेष महत्व रखता है), अपनी पुस्तक 'Arctic Home in the Vedas' ('आर्क्टिक होम इन दी वेदास') में यह प्रमाणित करने का यत्न किया कि योरुप और भारत तथा ईरान के आर्य लोगों के पूर्वज ध्रुव के निकट के रहने वाले थे, जहाँ पर उन्हें वैदिक साहित्य की प्रसिद्ध पुस्तक शतपथ ब्राह्मण के अनुसार एक भारी जलविप्लव का सामना करना पड़ा। पारसी लोगों की पवित्र पुस्तक "ज़िन्दावस्था" ने इसी कथा को हिम-वर्षा से सम्बन्धित बतलाया है। इससे पूर्व ध्रुव की जलवायु अत्यन्त समशीतोष्ण थी।

डा० वारेन (Warren) साहिब ने अपनी पुस्तक "Paradise Found or the Cradle of Human Race at the North Pole" अर्थात "स्वर्ग की खोज अथवा मनुष्य जाति का हिंडोला-उत्तरी ध्रुव" में इसी विचार का समर्थन करते हुये बताया है कि समूची मनुष्य जाति का प्रथम गृह उत्तरी ध्रुव था।

: ७ :

इस पुस्तक में हमने जिस विषय को दर्शाने का प्रयत्न किया है वह केवल उपरोक्त महानुभावों के विचारों का प्रतिबिम्ब ही नहीं है, इसका आधार शतपथ ब्राह्मण और जिन्दावस्था की पवित्र पुस्तकें हैं। मत्स्य पुराणने भी उस विप्लव का वर्णन किया है जिसमें से भगवान मनु को लांघना पड़ा और जिसमें उनके पथ प्रदर्शक भग-

वान मत्स्य थे। महाभारत, भागवत, और अन्य पुराणों में भी इसका वर्णन है। इसी विप्लव का प्रतिविम्ब "नूह के तूफान" की कथा में मिलता है। यूनानी देव-माला में भी इसी प्रकार के विप्लव का वर्णन आता है। इस विप्लव के कारण जल और उसी के दूसरे रूप हिम ने आर्य अथवा देव लोगों को उनके स्वर्ग या देव लोक से निकाला और वह साइबेरिया के विस्तृत स्थलों में से होते हुये मध्य ऐशिया की उपत्यकाओं और हिन्दूकुश की घाटियों में वसे जिसे उन्होंने अपने प्राचीन देश के नाम पर 'उत्तर कुरु' का नाम दिया (देव लोक के साथ महाभारत के समय तक भारत वासियों के सम्बन्ध का पता चलता है क्योंकि व्यास जी की यह अमर पुस्तक वताती है कि अर्जुन हिमालय को पार करके देव लोक में पहुँचे और वहाँ धनुर्विद्या के ज्ञाताओं से शिक्षा प्राप्त करते रहे)। तत्पश्चात उन लोगों में से एक भाग पश्चिम की ओर चलता हुवा योरुप में जा वसा; दूसरे भाग ने अलवुर्ज पर्वत को फांद कर ईरान को अपना नाम दिया और सबसे वड़े भाग ने आर्य्यावर्त को वसाया, जहाँ पर कि त्रिविष्टप से उतर कर आये हुये भगवान मनु और सप्तऋषि उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। यह देवताओं की स्वर्लोक से भूलोक में आगमन की कथा है। यह मनुष्यों के पूर्वजों की स्वर्ग या वहिश्त से निकलने की कहानी है। वाइबल और कुरान ने इसे ही दूसरे शब्दों में कहा है।

: ८ :

कहानी का आरम्भ उत्तर कुरु से हुआ है। साधारणतया इस देश को पुराणों और महाभारत के ग्रन्थकारों के मस्तिष्क की उपज समझा जाता है, परन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि प्रसिद्ध भूगोल-वेत्ता टालमी (Ptolemy) ने अपने भूगोल में इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित लिखा है।

"देश 'सैरीका' (Serica) अनीबियन (Annibian) आक्सेकियन (Auxacian) अस्मीरियन, केसियन, थागूरीन और हिमालय की पर्वत श्रेणियों से घिरा पड़ा है।

इनके अतिरिक्त एक और पर्वतश्रेणी उत्तर कुरुस कहलाती है जो १६६.३६ से १७६.३६ पूर्वी Longitude तक फैली हुई है। देश सैरीका (चीन) के उत्तरी भाग में (Anthropophagi) अर्थात् मनुष्य-भक्षी जातियां बसी हैं। उनके पश्चात् अनीवी और सिज़िगीस आदि आती हैं और सब के दक्षिण में हिमालय और सैरीकन पर्वतों के निकट उत्तर-कोरी रहते हैं।"

सैरीका अथवा चीन के नगरों में उत्तर कोरिया का नाम आता है जो १६५.३७.१५ Longitude पर स्थित है। फिर एक स्थान पर लिखा है कि "उत्तर कुरु में दिन अधिक से अधिक १४$\frac{3}{4}$ घंटे का होता है। सिकन्दरिया* से यह पूर्व की ओर सात घण्टे का मार्ग है।"

---

* यह सिकन्दरिया मध्य एशिया में था।

: ६ :

देव लोगों (आर्यावर्त में वसने वालों) और आर्यों [आर्य-वैजो से आकर आर्याना या ईरान को बसाने वालों] को हमने एक ही जाति से कहा है। पाठक इसके लिये हम से प्रमाण पूछेंगे। आज बीसवीं शताब्दी में इस विषय पर अधिक लिखने की अपेक्षा उदाहरण के रूप में हम कुछ संस्कृत शब्दों की सूची और उनके मुकाबले में प्राचीन पारसी पुस्तक "जिन्दावस्था" और अर्वाचीन फारसी के शब्द देते हैं। इससे पता चलेगा कि वास्तव में यह दोनों भाषाएं एक ही थीं। केवल देश और काल की दूरी ने बोलने के ढंग में थोड़ा सा अन्तर डाल कर उन्हें एक दूसरे से भिन्न कर दिया। और जब यह मान लिया जाय तो यह मानना सुगम हो जाता है कि इन भाषाओं को बोलने वाली जातियां भी एक ही थीं। सत्य तो यह है कि उनके देवता; आवागमन आदि पर उनका विश्वास; और अन्य बातें इसके सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रहने देतीं।

संस्कृत	ज़िन्द	फ़ारसी	हिन्दोस्तानी
पितर	पतर	पिदर	पिता
मातृ	मातर	मादर	माता
दुहित्र	दुग्धर	दुखतर	पुत्री
जामात्र	ज़ामात्र	दामाद	जमाई
श्वश्रु	श्वुर	ख़ुसर	सुसर
नर	नर	नर	नर

संस्कृत	ज़िन्द	फ़ारसी	हिन्दोस्तानी
जनि	जैनी	ज़न	जनानी
भ्रातृ	बरातर	बरादर	भ्राता
युवान	यवान	जवान	जवान
बाहु	वाजु	बाज़ू	बाज़ू
पाद्	पाद	पाद	पाओं
मृत	मरीत	मरद	मरद
जीव, जीवित	जीती, जीसती	ज़ी, ज़ीस्त	जिन्दगी
तनु	तनु	तन	तन
मज्जा	मज्ज़गा	मगज़	मगज़
शिरस	शर	सर	सिर
अस्थि	अशति, अश्ता	अस्ता, उस्तख्वान	हड्डी
चक्षु	चशमन	चश्म	आँख
अश्रु	अश्रु	अश्क	आंसू
दंत	दंतन	दंदान	दांत
हस्त	ज़श्त	दस्त	हाथ
मुष्टि	मुस्ती	मुश्त	मुट्ठी
अंगुष्ट	अंगुस्त	अंगुश्त	अंगुली
स्तन	फस्तान	पिस्तान	स्तन
जन्हु	जाहनू	ज़ानू	घुटना
उष्ट्र	उस्तर	शुतर, उस्तर	ऊंट
गो	गौ	गौ	गाय

संस्कृत	ज़िन्द	फ़ारसी	हिन्दोस्तानी
शूकर	सूर	खूक	सुअर
महिष	माहिष	महिष	भैंस
प्रण	प्रणि	पर	पर
प्रणीन	प्रिणिन	परिन्द	परिन्दा
मक्षिका	मक्षी	मगस	मक्खी
कृमी	कृमा	कृम	कीड़ा
कश्यप	कश्यप	कशफ़	कछुआ
मत्स्य	मश	माही	मछली

: १० :

प्रश्न हो सकता है कि देवलोग कौन थे? इस विषय पर अपनी ओर से कुछ कहने की अपेक्षा हम स्वामी शंकरानन्द जी की अंग्रेज़ी पुस्तक 'The Rigvedic Culture of the Pre-historic Indus' 'प्राग्-ऐतिहासिक सिन्ध की ऋग्वैदिक-संस्कृति' में से कुछ शब्द उद्धृत किये देते हैं। इस पुस्तक के पृष्ठ १०-११ पर आप लिखते हैं—

"मर्त्या ह वाऽ अग्रे देवा आसु"

— शतपथ ब्राह्मण ११-१-२-१२ व ११-२-३-६

अर्थात् "मनुष्य पहले देवता हुआ करते थे"; फिर—

प्राचीन प्रजनना वै देवाः प्रतचीन। प्रजन वा मनुष्याः॥

— शतपथ ब्राह्मण ७-४-२-४

"मनुष्यों और देवताओं में भेद पहिले या पीछे उत्पत्ति का है।"

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी पुस्तक 'ऋगवेदादि भाष्य भूमिका' भी शतपथ ब्राह्मण से अन्य कई प्रमाण उद्धृत करके यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि देवता लोग कौन थे। इसी भांति सनातन धर्म के प्रसिद्ध पत्र "कल्याण" गोरखपुर के सुलेखक हनुमानप्रसाद पोद्दार जी ने अपनी पुस्तक "प्रेम दर्शन" में देवर्षि नारद जी के भक्ति सूत्र पर टिप्पणि करते हुए पद्म-पुराण का एक प्रमाण दिया है, जो यह है—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन दैव आसुर एव च।
विष्णु भक्तः स्मृतो दैव आसुरस्त-द्विपर्ययः ॥]

"इस जगत में दो प्रकार के जीव हैं। एक दैव और दूसरे आसुर। जो भगवान् के भक्त हैं, वह दैव हैं, जो भक्त नहीं हैं, वही आसुर हैं।"

इससे ज्ञात होगा कि 'देवता' मनुष्य थे; वह पृथ्वी पर रहते थे, न कि आकाश पर। ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में वह चावल खाया करते थे। वैदिक काल में उनका भोजन जौ हुआ करता था, जैसा कि तैत्रिय ब्राह्मण १-३-६-८ में लिखा है—एतद्वै देवाना परमन्नं यन्नीवाराः। (निवार देवताओं का परम अन्न है।) परन्तु इन प्रमाणों की क्या आवश्यकता है जब कि यह स्पष्ट है कि मनु और सप्त ऋषि देवताओं के लोक का रहा सहा और शेष चिह्न थे जिनसे आगे मानव जाति या मनुष्य का सिलसिला चला।

बस मनुष्य देवताओं की सन्तान होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। वैदिक संस्कृत देवताओं की भाषा थी; आधुनिक संस्कृत मनुष्यों की भाषा रही है जो विभिन्न देशों में विभिन्न नामों से पुकारी गई है।

: ११ :

विष्णु पुराण के तृतीय अध्याय में श्री पाराशर जी मैत्रेय जी से कथन करते हैं :—

हे मुनि श्रेष्ठ ! १५ निमेष* को काष्ठा कहते हैं। ३० काष्ठा की एक कला तथा ३० कला का एक मुहूर्त्त होता है। तीस महूर्त्त का मनुष्य का एक दिन रात कहा जाता है और उतने ही दिन रात का दो पक्ष युक्त एक मास होता है; छः मासों का एक "ऐन" और दक्षिणायन और उत्तरायण दो ऐन मिलकर एक वर्ष होता है। दक्षिणायन देवताओं की रात्रि है और उत्तरायण दिन (श्लोक ६-१०)।

इसी प्रकार मनुस्मृति, अध्याय १, श्लोक ६७ में लिखा है—

"मनुष्यों के एक वर्ष में देवताओं का रात दिन होता है फिर उनका विभाग यह है कि उसमें उत्तरायण दिन है; दक्षिणायन रात्रि है।"

---

*आंख की पलक के गिरने के समय को निमेष कहते हैं। देखो मनुस्मृति, अध्याय १, श्लोक ६४। इस श्लोक में १८ निमेष की एक काष्ठा लिखी है; अन्य गणना वही है जो विष्णु पुराण में दी गई है।

प्रमाण और भी दिये जा सकते हैं परन्तु जिन विद्वानों को भारत के प्राचीन साहित्य से कुछ भी परिचय है वह जानते हैं कि समय का उपरोक्त विभाग समस्त हिन्दू साहित्य में मिलता है। विचारणीय बात यह है कि मनुष्यों (मनुजी की सन्तान) के रात्रि और दिवस जो तीस मुहूर्त्त या चौबीस घण्टों के होते हैं भारत आदि देशों में साधारणतया दीख पड़ते हैं क्योंकि यहां पर सूर्यदेव को सन्मुख रखते हुए इसी समय विभाग में हमारी पृथ्वी अपने आप के गिर्द एक चक्कर समाप्त करती है। परन्तु क्या कोई प्रदेश ऐसा भी है जहां पर एक ऐन अर्थात् आधे वर्ष तक सूर्यदेव उसके सन्मुख और आधे वर्ष तक उसके दूसरी ओर रहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर भूगोल के विद्वान् सुगमता से दे सकते हैं कि वह प्रदेश उत्तरी ध्रुव है जहां पर सूर्यदेव छः मास तक दृष्टि से ओझल नहीं होते।

साधारण वैदिक प्रार्थना "जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम्" इत्यादि अर्थात् "हम सौ शीत तक जीवित रहें, सौ शीत तक सुनें" बताते हैं कि यह उस देश से आरम्भ हुई जहां इतनी दीर्घ काल तक शरद ऋतु रहा करती थी।

जिन्दावस्था में भी दश मास के जाड़े का वर्णन आता है; यह केवल उत्तरी ध्रुव पर ही हो सकता है और किसी स्थान पर नहीं।

यह प्रदेश ध्रुव का ही है जहां उत्तरायण में सूर्य चमकता है और जहां पर देवता किसी प्राचीन काल में रहे होंगे। वही देवता जब देवलोक को त्याग कर भारत में आये तो मनुजी की सन्तान होने

के कारण मनुष्य कहलाये और इस स्थान के दिवस और रात्रि को जो देवलोक के दिन और रात से बहुत छोटा था मनुष्यों का दिन और रात कहा।

: १२ :

पाठक अनुभव करेंगे कि हम ने इस कथा में देवताओं के विपत्तियों को असुर के स्थान पर (जिस नाम से संस्कृत के विद्वानों ने उन्हें साधारणतया पुकारा है) दस्यु नाम दिया है। इसके संबंध में हमें केवल इतना कहना है कि दस्यु शब्द श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के कथन के अनुसार उन सब मनुष्यों पर लागू होता है जो भले पुरुषों के विरोधी रहे हैं। जिन लोगों ने देवताओं का विरोध किया, जो किसी नीच भाव से उनके देशों में नहीं आये थे—वह असुर थे अथवा कोई और—प्रत्येक अवस्था में दस्यु कहे जा सकते हैं।

॥ इति ॥

वैवस्वत मनु और श्रद्धा

चेतावनी

*"प्राकृत जगत में शरद ऋतु आ रही है! वह शरद ऋतु जो आज पर्यन्त दृष्टिगोचर नहीं हुई। वह ऋतु अपने साथ झक्खड़, कोहरा, पाला, हिम लिये आ रही है। पर्वत शृंगों पर, खड्डों की कंदराओं में, उपत्यकाओं पर, जल और हिम के अतिरिक्त कुछ भी दीख नहीं पड़ेगा। मनुष्य, पशु, पक्षी को पर्वत, कन्दरा, समतल भूमि कहीं पर भी शरण नहीं मिलेगी, इससे बचने का प्रबन्ध हो सकता है तो करलो!"

यह शब्द थे जो देवलोक की एक भारी सभा में मत्स्य जी ने कहे और जिन्हें सुनकर उस सभा के प्रधान वैवस्वत मनु ने कहा—

मनु—देवलोक की जलवायु सदैव से ऐसी रही है कि न तो सूर्यदेव इसे अत्यन्त तपा सके हैं, न ही शरद ऋतु इसे आवश्यकता से अधिक ठण्डा कर सकी है। सूर्यदेव सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते हैं और वर्ष में केवल अल्प समय के लिए दृष्टि

---

* इस चेतावनी के लिए देखो ज़िन्द अवस्था, फरगर्द २।

से ओझल होते हैं फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि सहसा इन देशों में हिम की अधिक वर्षा हो जाय। निःसन्देह पिछले वर्ष यहां हिम वर्षा हुई थी परन्तु यह सदैव नहीं हो सकती।

मत्स्य—सत्य कहते हो वैवस्वत! सदैव के लिये किसी वस्तु का स्थिर रहना असम्भव है, परन्तु पृथ्वी, सूर्य और नक्षत्रों के चक्र में क्या सम्भव नहीं?

मनु—सूर्यदेव जिस तीव्र दृष्टि से हमारे देश की ओर निहार रहे हैं उसे जानते हुये यह मानना कठिन है कि सहसा इस देश पर वह आपत्ति आजायगी जिसका आप कथन कर रहे हैं। हिम वर्षा के लिये अत्यन्त शीत का होना आवश्यक है।

मत्स्य—भविष्य का पता देना मेरा धर्म है, मानना न मानना तुम्हारा कर्म है। मेरी दिव्य दृष्टि ने जो कुछ देखा वह कथन कर दिया। उसे स्वीकार करना और स्वीकार करके उस पर चलना तुम लोगों का काम है।

मनु—समस्त देशका, देश की समस्त सेना का, गृह छोड़कर, सम्पत्ति छोड़कर, लक्ष्मी, पृथ्वी, गृहवस्तु छोड़कर न जाने हुये देशों को प्रस्थान कर जाना, केवल इस कारण कि आपकी दिव्य दृष्टि ने ऐसा देखा है, बुद्धि में नहीं आता, इसके लिये इससे अधिक ज्ञान की आवश्यकता है।

मत्स्य—सत्य है, मेरे कहे पर देवलोक का उजड़ जाना अच्छा नहीं। इसके सम्बन्ध में विद्वानों की सम्मति की आवश्यकता है,

पृथ्वी और नक्षत्र विद्या के विशेषज्ञों से पूछने की आवश्यकता है। यदि वह मेरे कहे का समर्थन करें तो न केवल देवलोक के लोगों को बल्कि इधर उधर के देशों को जो क्षीर सागर के आस-पास बसते हैं सूचना हो जानी चाहिये। हमने जो भविष्यवाणी सुनी है वह बताती है कि देवलोक ही नहीं * श्वेत खण्ड, हिरण्य खंड इत्यादि भी जल और हिम के नीचे निमग्न हो जायेंगे। महा प्रलय आयेगी अथवा जल का महान् विप्लव उठेगा वह सैकड़ों योजन तक पृथ्वी को घेर लेगा महान् हिम वर्षा फल फूल, वृक्ष-लता, पशु पक्षी और मनुष्य का सर्वनाश कर देगी। जो लोग इस वर्षा के आरम्भ में इन देशों से निकल जायेंगे अपने आप को सुरक्षित कर लेंगे। जो इसके अन्त की राह तकते रहेंगे उनकी अस्थियां हिम में सदैव के लिये दब जायेंगी। हमारी इच्छा है कि राष्ट्र की ओर से इस देश से दूर, अतिदूर एक बाड़ा बनाया जाय। उसमें इन देशों के फल फूल, शाक पात, पशु पक्षी आदि का संग्रह कर लिया जाय। देश में भारी गिनती में नौकाएं बना ली जांय ताकि समय पर काम आ सकें।"

बात बहुत प्राचीन है उस समय की जिसके सम्बन्ध में इतिहास मूक है और जिसे बीते करोड़ों नहीं तो लाखों वर्ष अवश्य हो चुके हैं। बात भी उस प्रदेश की है जिसका पता आजकल

---

*यह खण्ड देवलोक के उत्तर में थे। देवलोक जम्बू द्वीप के उत्तर में उत्तरीय ध्रुव के समीप था। इस लोक की सब से प्रसिद्ध पर्वत श्रेणी 'सुमेरु' थी।

का भूगोल नहीं दे सकता क्योंकि उत्तर कुरु, श्वेत खण्ड, हिरण्य-खण्ड आदि द्वीप आज उत्तरीय समुद्र के नीचे हैं। ज्योतिष और नक्षत्र विद्या के विशेषज्ञ बताते हैं कि पृथ्वी उस समय से जिसकी कथा हम लिख रहे हैं बहुत पिचक गई है इसलिये इन महाद्वीपों का पता लगाना असम्भव नहीं तो अति दुष्कर अवश्य है। प्राचीन ग्रन्थों में से रामायण में इसका वर्णन आता है। वहां महर्षि वाल्मीकि सुग्रीव के शब्दों में उत्तर कुरु का वर्णन करते हुए कहते हैं—

"वहां पुण्यात्मा लोग रहते हैं, वहां सूर्य के समान देदीप्य-मान अनेक सरोवर बह रहे हैं। अमूल्य मणियों जैसे पत्तों और स्वर्ण सरीखे जाज्वल्यमान केसरों वाले अद्भुत नील कमल खिल रहे हैं, नदियों के तीर गोल माणिकों, अमूल्य धातुओं और स्वर्ण आदि से सज रहे हैं। उन के समीप अद्भुत, विचित्र और सुन्दर पर्वत खड़े हैं। वहां के वृक्षों में सदैव फल-फूल लगे रहते हैं जिनमें से विचित्र सुगन्धि और स्वादिष्ट रस निकलता है।............ उससे आगे क्षीर समुद्र है जिसमें सोमगिरि पर्वत है..........
..........................."

महाभारतकार महर्षि व्यास भीष्म पर्व में इन प्रदेशों के सम्बन्ध में लिखते हैं, "सुमेरु के चारों ओर भद्राशव, केतूमाल, जम्बू द्वीप और उत्तर कुरु यह चार द्वीप हैं। उत्तर कुरु द्वीप में पुण्यात्मा लोग रहते हैं, इस पर्वत पर पक्षियों में भी उत्तम, मध्यम और अधम का भेद नहीं। सूर्य, चन्द्र, सर्व नक्षत्र, तथा

वायु इस पर्वत की प्रदक्षिणा करते रहते हैं। वहां पर वृक्ष सुन्दर फलों और फूलों से लदे रहते हैं। वहां के दिव्य भवन स्वर्णमय और स्वर्ण की सामग्री से अलंकृत हैं ....।

सुमेरु के पश्चिम ओर केतूमाल नाम का महान् जनपद है। वहां के पुरुषों के शरीर का रंग तप्त स्वर्ण के समान है। वहां की स्त्रियां अप्सराओं के समान होती हैं। उन्हें रोग और शोक नहीं होता। वह सदा प्रसन्न दीख पड़ती हैं। इत्यादि इत्यादि......।”

यह प्रमाण बताते हैं कि रामायण और फिर महाभारत के समय में इस द्वीप का कुछ भाग पृथ्वी पर शेष था। परन्तु जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं वह इन समयों से बहुत प्राचीन है। उस समय यह द्वीप इस पृथ्वी पर वास्तव में स्वर्ग का प्रतिबिम्ब थे। ऐसे देशों के लिए इस प्रकार की हिम वर्षा की घोषणा, जैसा कि भगवान मत्स्य ने की थी, एक पागल की बड़ से अधिक नहीं कही जा सकती थी। परन्तु भगवान् मत्स्य अपनी तीव्र बुद्धि के लिये जगत्विख्यात थे इसलिये उत्तर कुरु के वृद्धों ने इस सम्बन्ध में कुछ सोच-विचार किया। परन्तु सब के विचार उनके कथन के विरुद्ध जा रहे थे। उत्तर कुरु में, जैसा कि ऊपर कथन किया जा चुका है, पिछले वर्ष पहिली बार हिम दृष्टिमें आई थी, परन्तु वह साधारण बात थी, इसलिये उसका देश की अवस्था पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा था। इस कारण थोड़े दिनों के पश्चात् यह सब कुछ देश वासियों के ध्यान से उतर गया।

———

ज्वालामुखी

रात्रि आधी से अधिक बीत चुकी थी। वह रात्रि नहीं जो भारत में अधिक से अधिक चार पहर में बीत जाती है, बल्कि वह जो आठ पहर के अहो रात्रि के अनुसार से आज भी ध्रुव पर दो मास में पूर्ण होती है। हाँ उत्तर करू की रात आधी से अधिक समाप्त हो चुकी थी जबकि क्षीर सागर के इर्दगिर्द के प्रदेशों के लोगों ने एक अद्भुत प्रकार का घरघराहट का शब्द वायु मण्डल में उठता सुना। निस्तब्धता का साम्राज्य था, इसलिये यह शब्द जो आरम्भ में एक धीमी सी सीटी का शब्द था कुछ ही काल में बहुत ऊँचा सुनाई देने लगा। साथ ही क्षीर सागर के जल में लहरें ज़ोर से उठने लगीं।

समय बीता और यह शब्द एक मोटे पले हुये शूकर के शब्द का सा हो गया। और समय व्यतीत हुआ और वह आकाश म गड़गड़ाते हुये बादलों के शब्द के समान था।

पर्याप्त काल तक यह कोलाहल इसी भांति चलता रहा। सागर का ज्वार भी बढ़ता गया और उन नदियों का पानी, जो दक्षिण से उत्तर को बहती हुई सिन्धु में गिर रही थीं, पीछे मुड़ने लगा।

अन्धकार के कारण इस कोलाहल और विप्लव का पता लगाना आसान न था इसलिये सब लोग अपने २ गृहों में दुबके हुये इस अदृष्ट आपत्ति के निग्रह के लिये प्रार्थना करने लगे। आज-कल के समयानुसार कई दिन व्यतीत हो गये जब सुमेरु पर्वत की सब से ऊंचे शिखर पर लालिमा और श्वेत रेखा दृष्टि गोचर हुई। यह उषा की तीस बहिनों में से पहिली के आने का चिह्न था।

और समय बीता। अब उषा की दूसरी और छोटी बहिन बड़ी बहिन के हाथ में हाथ दिये सुमेरु की दूसरी चोटी पर नृत्य कर रही थी।

सूर्य्यदेव पृथ्वी के किसी दूसरे भाग में प्रकाश के शत्रु अंध-कार को पराजित कर उत्तरीय मैदानों की ओर आ रहे थे और उषा की बहिनें उनके आने पर हर्षातिरेक में नृत्य कर रही थीं। उत्तर कुरु के नगरों में प्रकाश के आने के साथ २ जीवन के चिह्न दीख पड़ने लगे और लोग अन्धकार के दूर होने पर हर्ष मनाने और यज्ञ करने के लिये सामग्री इकट्ठी करने लगे। उस समय कुछ शूरवीर नवयुवकों ने जिनके शरीर आधुनिक मनुष्यों की भांति छै सात फुटों में नहीं बल्कि छै सात गज़ों में मापे जाते थे रात के कोलाहल और विप्लव के कारण जानने के लिये समुद्र में जाने का विचार किया परन्तु जल के भीतर कोलाहल बढ़ता जा रहा था और विप्लव में वढ़ती होती जा रही थी। स्थान २ पर मीलों ऊंची लहरें उठ रही थीं इस कारण नाव का वहां पहुंचना असम्भव था। नियत समय पर सूर्यदेव ने सुमेरु पर्वत के एक

ओर से झांका, मानो निद्रा से जाग रहे हैं, तो ध्रुव प्रदेशों में आनन्द की लहर दौड़ गई कि काली भयानक और डरावनी रात किसी भांति कट गई।

लोग देश के भीतरी प्रदेशों से सागर तीर की ओर जाने लगे कि समुद्र की अद्भुत हलचल का कारण ज्ञात करें। वहां पहुँचने पर पता चला कि सुमेरु पर्वत से दूर समुद्र में भयानक भँवर उठ रहे हैं मानो जल के अन्दर दो भारी अजगर एक दूसरे से युद्ध कर रहे हैं।

सुमेरु के दूसरी ओर पर्वत शिखर पर धुएं के दल के दल निकलते दिखाई दे रहे थे। समुद्र का प्रश्न पहिले ही समझ में न आता था अब पर्वत का प्रश्न और भी कठिन हो गया। कई मास तक यही कुछ होता रहा। तत्पश्चात् जब लोग इस प्रति दिन के कोलाहल के अभ्यस्त हो चुके थे समुद्र ने गर्भिणी स्त्री की भांति अपनी अन्तिम शक्ति लगाई और स्थल का एक भारी भाग उस पर तैरता हुआ दिखाई दिया—मानो वाराह भगवान ने पृथ्वी को अपने सींगों पर उठाकर पानी के वक्षस्थल पर रख दिया। देखने वालों के लिये जलसमूह पर ठोस पृथ्वी का तैरना एक अचम्भा था और वहुत समय तक यह क्षीर सागर का एक चमत्कार माना जाता रहा।

समय और व्यतीत हो गया समुद्र में छिपे हुए ज्वालामुखी का ज़ोर और अधिक हो गया, जिसके कारण समुद्र में ज्वार आये और उत्तर कुरु, श्वेत खण्ड आदि के तीर जल निमग्न हो गये।

इससे सहस्रों जीवन नष्ट हुए। भगदड़ मच गई। लोग जो कुछ बचा सके उसे लेकर देश के भीतरी भाग की ओर भागने लगे। उस समय प्रत्येक की जिह्वा पर मत्स्य भगवान की भविष्यवाणी की चर्चा थी। परन्तु थोड़े ही समय के पश्चात् जगत् के कार्य यथापूर्व चलने लगे। जगत् की स्मृति दुर्बल है और यही दुर्बलता जगत् का आधार है।

सुमेरु से परे पर्वत से धुएं के बादल निकल रहे थे। उत्तर कुरु और आस पास के द्वीपों में भूचाल आ रहे थे। पृथ्वी के गर्भ से भयानक शब्द निकल रहे थे। समुद्र में ज्वार बड़े जोरों से आ रहे थे और यह सब इस बात का चिह्न था कि प्रकृति अपना कार्य नहीं भूली। वह ज्वालामुखी जो अपने मुख से धुआं निकाल रहा है एक बड़े भारी काले नाग के समान भीतर ही भीतर विष घोल रहा है परन्तु यह सब कुछ इतने लम्बे समय तक होता रहा कि लोगों के दिल से उसका आतंक, जो प्रारम्भ में उत्पन्न हुआ था, जाता रहा और अब आस पास के प्रदेशों से लोग नाव लेकर जाते और ज्वालामुखी के आस पास के वनों और जङ्गलों में से फलों फूलों को खाते और आनन्द मनाते हुए उसके मुख के समीप पहुँच जाते थे जो तीस चालीस गज़ से अधिक खुला हुआ एक भारी इञ्जन की भांति धुएं के बादल आकाश में फेंक रहा था। समय और बीत गया। ज्वालामुखी का शब्द जो पचास साठ कोस तक सुनाई देता था अब सैंकड़ों कोसों तक सुनाई देने लगा और उसके साथ ही धुएं में राख इतनी

अधिक मात्रा में उठने लगी कि सारा ध्रुव प्रदेश जो पहिले हिम विमल मुक्ता मणि की भांति दमकता था काला दीख पड़ने लगा। सुमेरु शिखर जो अपनी सुन्दरता से लोगों के हृदय को मुग्ध करते थे, अन्धकार के रूप में परिवर्तित हो गये। ध्रुव का छै से लेकर दस मास तक का दिन रात्रि के रूप में बदल गया। इर्द गिर्द के समुद्र और द्वीप राख के टोप से ढक गये। लोगों के लिये श्वास लेना कठिन हो गया, सहस्रों कोसों तक वायु राख से भर गई। उस समय किसी को यह नहीं सूझता था कि वह क्या करे और कहां जाय। लोग नेत्र फाड़ २ कर अन्धकार में देखना चाहते थे परन्तु कुछ भी दीख न पड़ता था। चारों ओर व्याकुलता थी, लोग समझते थे कि उत्तर कुरु की पुण्य भूमि भविष्य में सूर्यदेव के दर्शन नहीं कर सकेगी। वे इधर उधर भाग कर अन्धकार से बाहर निकल रहे थे पर अंधेरे में अपने पराये का भेद कहां? किसी को यह ज्ञात नहीं था कि उसके साथ उसके अपने बालक बालिकाएं हैं, या अन्य के। साथ ही क्षीर सागर का ज्वार ज़ोर से बढ़ रहा था। समुद्र का जल बल्लियों उछल कर ठोस पृथ्वी को डुबा रहा था और भागने का यत्न करते हुए लोग लहरों के थपेड़ों का शिकार हो रहे थे। उस समय कौन कह सकता था कितने मनुष्य और पशु पक्षी समुद्र में ग़र्क हो चुके या होने वाले हैं।

पर्याप्त और दीर्घ काल तक जल का ज़ोर बढ़ता गया। चारों ओर जहां सुन्दर नगर और उद्यान थे जल ही जल हो गया। उत्तर कुरु के लोगों के नाव और नौकाएं जल में तैरने लगीं, पर वह

भी अन्धेरे में कई वार एक दूसरे से टक्कर खा कर उलट गईं।

इतनी हानि होने पर भी ज्वालामुखी देवी के मुख पर क्रोध के चिह्न ज्यों-के-त्यों थे। उसके मुख में से अव धुएं के स्थान पर लाल उवलते हुये लावे के फव्वारे उठ रहे थे जो चारों ओर बसी हुई पृथ्वी को दग्ध कर रहे थे।

कुछ समय तक यह होता रहा। ज्वालामुखी की तीव्रता और भी बढ़ गई। उत्तर कुरु में होने वाली दुर्घटनाओं का शब्द सहस्रों कोसों तक पहुंच गया। सूर्य देव का मुख लालिमा में वदल गया और सहस्रों कोसों पर रहने वाले लोग इस अद्भुत चमत्कार को देख २ कर नये २ विचार प्रगट करने लगे।

एकाएक भयंकर गर्जन का शब्द हुआ, मानो सहस्रों तोपें एक वार ही छोड़ दी गईं। इस के साथ ही उत्तर कुरु, श्वेत खण्ड, हिरण्य खण्ड के बहुत से द्वीप खण्ड २ होकर समुद्र में निमग्न हो गये। अव चारों ओर जल ही जल था जिसके ऊपर कुछ नाव और नौकाएं तैर रही थीं। सागर की लहरें उन्हें उलट उलट कर डुबाने पर तुली हुई दिखाई देती थीं।

हमारे यहां दिन रात चौवीस घण्टे का है पर ध्रुव के लिये घण्टों का यह माप काम नहीं देता। वहां पर दिवस दश मास तक से कम नहीं क्योंकि छै मास तक सूर्य दृष्टि के सामने रहता है और दोनों ओर दो २ मास की उषा और सायंकाल मिला कर दिन का प्रकाश दश मास तक चला जाता है। इस भान्ति वहां का दिन हमारे यहां के एक वर्ष के बरावर होता है। ध्रुव से कुछ इधर यह दश मास का है। यह देवताओं का एक दिन है जो सुमेरु के आस-पास बारह मास से कम का नहीं।

ऐरावत खण्ड

यह सब कुछ हो रहा और हो चुका था परन्तु प्रकृति की इस अद्‌भुत लीला से अनभिज्ञ एक छोटा सा जन-समूह एक छोटी सी नाव में उत्तर कुरु के ऊपर वाले समुद्रों में से होता हुआ उस महाद्वीप के एक महानद की यात्रा कर रहा था जिसमें प्रवेश करने का गर्व उस देश के किसी वासी को न हुआ था। पिछले कुछ वर्षों में क्षीरसागर में बड़े २ तूफान आ चुके थे उन में से एक का परिणाम ऐसा अद्‌भुत हुआ था कि जनता उस पर विश्वास नहीं करती थी क्योंकि वायु के वेग और सागर के थपेड़ों ने कुछ ऐसे वृहत्‌काय जीवों को जिन्हें आज-कल के हस्ती का महा-पितर कहा जा सकता है जल से उछाल कर उत्तर कुरु की भूमि पर फैंक दिया था। उन जीवों की ऊंचाई १६ फीट से ऊपर थी और मुख के बाहर हस्ती की भान्ति ही सूंड और बड़े २ दन्त दिखाई देते थे। उत्तर कुरु वालों ने इसे "ऐरावत" का नाम दे कर अपने महापितर की सवारी के लिये रख लिया था। इसी भांति दूसरी बार फिर सागर वायु आदि के वेग से उछल २ कर उत्तर कुरु और आस-पास की पृथ्वी को डुबाने लगा तो ज्वार के पश्चात् ऐसे वृहत्‌काय जीवों का आकार दिखाई दिया, जिन्हें आज-कल के घोड़ों का पितर कहा जा सकता है। इन जीवों को "अश्व" कहा गया क्योंकि वह बहुत तेज़ दौड़ते थे।

इन बातों से यह विचार पैदा हुआ कि उत्तर कुरु से आगे—शायद बहुत आगे—कोई ऐसा द्वीप है जिसमें ऐसे बड़े २ जीव उपस्थित हैं। यह छोटा सा जन-समूह जिसमें वैवस्वत मनु के अतिरिक्त सप्त ऋषि भी थे इस बात की खोज की इच्छा से इस अज्ञात द्वीप के भीतर घुसा जा रहा था। उन्हें उस समय यह ज्ञात नहीं था कि उनके अपने देश पर क्या बीत रही है। सागर की भीषण गड़गड़ाहट की आवाज और ज्वालामुखी के फटने के धमाके उनके श्रोत्रों ने सुने थे परन्तु इस का सम्बन्ध उन के अपने देश से होगा, यह वह नहीं जानते थे।

नाव तीव्र गतिसे देशके भीतर बढ़ी जा रही थी। उसके दोनों ओर दो अन्य नावें आवश्यक सामग्री से भरी हुई चल रही थीं। महानद के दोनों तीरों पर बड़े २ ऊंचे वृक्ष गगन को चूमते हुये ऊपर जाकर एक दूसरे से मिल गये थे। उनमें छाया वाले वृक्ष भी थे, फल वाले वृक्ष भी थे और अन्य अनेक प्रकारके वृक्ष भी थे जिन्हें इन लोगों ने पहिले कभी नहीं देखा था। नाव के नाविक समय २ पर इन वृक्षों के फल प्राप्त करते थे जो मौक्तिक मधु से अत्यधिक मीठे थे। वह लोग उन्हें "अमृत फल" कहते थे।

नाविक नाव को तीर से दूर मंझधार में लिये जा रहे थे क्योंकि महानद के दोनों ओर का वन वन्य पशुओं से भरा हुआ था जो मनुष्यों पर आक्रमण करने से डरते नहीं थे। एक स्थान पर पहुंच कर नाविकों ने अपने डांड छोड़ दिये और नाव वालों का

ध्यान नदी तीर की ओर अकर्षित किया जहां पर एक ऐरावत ❀ युगल अपने शिशु के साथ जल क्रीड़ा कर रहा था यह युगल बहुत ऊँचे आकार का था और उसे देख कर सब विस्मित रह गये। शिशु भी जो अभी बहुत अल्प-आयु दीख पड़ता था दस फुट के बराबर था। प्रकृति के इस अद्भुत नमूने को देख मनु ने धीरे से कहा, "प्रकृति ने इस जगत में किस २ प्रकार की सृष्टि उत्पन्न कर रक्खी है। वह देखिये इसके बड़े-बड़े दांत। उनमें से एक पांच मन से क्या ही कम होगा?"

गौतम—(मनु का एक साथी) वह ऐरावत जो उत्तर कुरु में देखा गया था उसके एक दांत को एक व्यक्ति कठिनता से उठा सकता था।

मनु—और वह इसके सामने शिशु प्रतीत होता था।

इनकी बातचीत का शब्द जल में से होता हुआ ऐरावत युगल के कानों में पहुंचा और वह क्षण भर में वन में इतना शीघ्र भागता हुआ गुम हो गया कि किसी को यह ध्यान में नहीं आ सकता था कि वह अभी यहां जल क्रीड़ा कर रहा था। नाव और

❀ विदेशी भाषाओं में इसे Mammoth (मैमथ) के नाम से पुकारा गया है इस जीव के हिम के नीचे वे हुये अनेक शरीर इस समय तक निकल चुके हैं जिन में से कुछ रूस देश की राजधानी के अजायब घर में देखे जा सकते हैं। इसका दांत जो हाथी दांत के स्थान पर काम आता है आज भी साइबेरिया के उत्तरी टापुओं में बर्फ में दबा हुआ बहुत मिलता है।

आगे बढ़ गई। अब जल की धारा भी तेज चल रही थी और नाव की चाल जल के वहाव के विरुद्ध चलने के कारण धीमी हो गई थी। मनु ने भरद्वाज को सम्बोधन करके कहा :—

मनु—इस समय मेरा ध्यान मत्स्य जी की चेतावनी की ओर जा रहा है। मुझे अभी तक उसकी समझ नहीं आ रही।

भरद्वाज—उनका कथन था कि थोड़े समय में उत्तर कुरु के देशों में भारी हिम वर्षा होगी। आपका प्रयोजन उसी से है ?

मनु—हां इस समय तक उत्तर कुरु की अत्यधिक विशेषता यह रही है कि यहां पर सदैव वसन्त ऋतु का समय रहता है। फिर हिम का पड़ना कैसे हो सकेगा? निश्चय मत्स्य जी से भूल हुई है।

भरद्वाज—वास्तव में ऐसा ही दीख पड़ता है परन्तु मत्स्य अद्वितीय विद्वान हैं। पृथ्वी, सूर्य, नक्षत्रों, तथा ग्रहों के सम्बन्ध में उनका ज्ञान विज्ञान बहुत बढ़ा हुआ है, इसलिये यदि उन्होंने ऐसा कहा है तो उसका कारण अवश्य होगा।

मनु - यही तो विचार है जो आश्चर्य उत्पन्न करता है।

वशिष्ठ—इस समय तक प्रकृति के सारे ज्ञान हमें प्राप्त नहीं हुये। परम पिता परमात्मा का ज्ञान जो सृष्टि के आदि में हम लोगों को प्राप्त हुआ उसे भी हम ने पूर्ण रीति से स्वीकार नहीं किया। इसी कारण हमारा अज्ञान हमारे ज्ञान से प्रवल है।

गौतम—सूर्य चक्र में है। पृथ्वी घूम रही है। तारागण चक्कर में हैं। उनके चक्कर सदैव एक दूसरे पर प्रभाव डालते रहते हैं। इस कारण क्या यह नहीं हो सकता कि एक समय पर

जहां शरद-ऋतु है दूसरे समय में वहां ग्रीष्म आ जाय और जहां पर ग्रीष्म है वहां हेमन्त का राज्य हो जाय ?

मनु—(सोचते हुये) हो सकता है।

गौतम—वेद अग्नि देव को ऋतुओं को उत्पन्न करने वाला कहता है, द्यु लोक में यह अग्नि सूर्य रूप में उपस्थित है और जितना समय कोई देश सूर्य देव के निकट रहता है वहां ग्रीष्म ऋतु रहती है। जिस समय पृथ्वी अपने किसी चक्कर के कारण अपना स्थान परिवर्तित कर लेती है उसके ऋतु परिवर्तित हो जाते हैं। नक्षत्र विद्या के विद्वानों का अनुमान है कि पृथ्वी अपने आप के गिर्द घूमती हुई सूर्य देव की जो परिक्रमा कर रही है इक्कीस सहस्र वर्षों में उस परिक्रमा में एक ऐसा परिवर्तन होता है जो उसके स्थान में भारी परिवर्त्तन कर देता है। इससे आधे [साढ़े दस सहस्र] वर्ष में पृथ्वी जहां पहिले सूर्य के बहुत निकट होकर उसकी परिक्रमा कर रही होती है स्थान बदल कर उससे दूर चली जाती है। इसलिये इतने समय बीतने पर उन देशों में जाड़ा हो जाता है—जहां पौष माघ या फाल्गुण मासों में शरदऋतु रहा करती थी उन्हीं महीनों में वहां ग्रीष्म आने लग जाती है।

मनु—ज्यों २ हम वेद विद्या का, जो प्रकृति और ब्रह्म की विद्या है, अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करते जायेंगे यह सब बातें स्पष्ट होती जाएंगी।

बात समाप्त न होने पाई थी कि मनु और उसके साथियों ने वायु में जोर का शब्द सुना। ऊपर दृष्टि की तो क्या देखते हैं कि

एक महान पक्षी जिस के परों का फैलाव कई गज का था वायु में उड़ा जा रहा था। कुछ क्षण तक वह उस की उड़ान को देखते रहे और जब वह दृष्टि से ओझल हो गया तो नाविकों में से एक ने कहा :—

नाविक—इस को इधर के लोग गरुड़❀ के नाम से पुकारते हैं। यह पक्षिराज कहा जाता है। कभी २ इसका शिशु किसी के हाथ लग जाय तो उसे सधा कर उसपर सवारी भी की जा सकती है। परन्तु वायु में उड़ते हुये, इसके परों पर बैठना सुगम नहीं।

मनु—सुना है यह पक्षी पहिले सुमेरु पर्वत पर रहा करते थे पीछे उस स्थान को छोड़ गये।×

नाविक—यह सत्य होगा कि यह पक्षी नहीं चाहता की कोई और पक्षी इस की समानता करे और सुनने में आया है कि आप के उत्तर कुरु में ऊँच नीच का कोई भेद नहीं इस कारण इसका वहाँ उस वातावरण में रहना कहाँ हो सकता था जहाँ सब एक जैसे समझे जाते हैं।

मनु चुप हो गये। नाव को चलते हुये अब कई घण्टे बीत चुके थे उनके सब साथी विश्राम कर रहे थे और नाविक भी, उनके अतिरिक्त जो डांड चला रहे थे, सब के सब ऊँघ रहे थे। चारों

❀पारसी लोगों की पुस्तकों में इसे "सीमुर्ग" का नाम दिया गया है।

× देखो महाभारत, भीष्म पर्व।

और निस्तब्धता थी जिसे हिलते हुये पत्ते या पक्षियों के फड़फड़ाते हुये पंख अथवा जल के रप २ का शब्द तोड़ रहे थे। उस समय मनु का ध्यान दूर, अति दूर, पहुंच कर किसी के सुन्दर आकार, सुनहरी केशों, नील नेत्रों, और मुस्कराते हुये अधरों को उनकी दृष्टि के सामने ला रहा था। वह मौन थे; उनके नेत्र खुले थे, परन्तु वह ऐरावत खण्ड के विशाल महानद और उसके तीर के वनों और जंगलों को नहीं देख रहे थे। उनकी दृष्टि के सामने एक चित्र था जो उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। उनके श्रोत्र वन्य पक्षियों के गान की ओर ध्यान न दे कर उस शब्द को सुन रहे थे जो उन्हें सम्बोधन करके कह रहा था "श्राद्धदेव! कहाँ चले गये?"

इस प्रश्न के उत्तर में उनके अधर हिलते हुये दिखाई दिये और स्यात वह कोई शब्द मुँह से कहने को थे कि नाविकों ने उच्चस्वर से कहा "हमारे प्रदेशकी सीमा आगई। इससे आगे जाने की आज्ञा हमें नहीं है।"

मनु इस स्वर को सुनकर चौंके तो नाविक नाव को तट के वृक्षों से बांध रहे थे।

ऐरावत और मगर का युद्ध

त्रिकूट पर्वत की तराई में मनु और उनके साथियों के खेमे गढ़े थे। वह ऐरावत खण्ड के वनों में से होते हुए उस पर्वत श्रेणी तक पहुँच गये थे जिसके शिखर आकाश से बातें कर रहे थे। चारों ओर हरियाली थी, देवदारु और चील के गगन चुम्बी वृक्ष अपनी उच्चता से पर्वत शिखरों को मात करने का यत्न कर रहे थे और उनमें सब से लम्बे वृक्ष की ऊंची शाखाओं में बैठे हुए मनु की दृष्टि अपने आस पास के प्रदेश का निरीक्षण कर रही थी। उस वृक्ष पर जो पास के पर्वत से बहुत ऊंचा उठ गया था उसे जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा था उसे देखकर वह विस्मित हो रहा था क्योंकि दूर फासले पर पर्वतों के अन्दर तक विशाल सरोवर दीख रहा था जिसका जल डिबिया में रक्खे हुए पारे के समान चमक रहा था। उस सरोवर से आगे बहुत दूर पृथ्वी में छेद से दिखाई दे रहे थे। भली प्रकार देखने पर उनके भीतर जीवन के चिह्न दिखाई दिये क्योंकि ऊंचे वृक्ष की मचान से ऐसा प्रतीत हुआ मानो ठिगने क़द के बावने मनुष्य उनके आस पास फिर रहे हैं। वह अभी इस बात का निर्णय न कर पाये थे कि वह कौन हैं कि सरोवर के एक ओर से एक करुणापूर्ण चीत्कार वायुमण्डल में गुंजायमान हुआ। मनु ने उधर दृष्टि की तो एक शक्तिशाली ऐरावत विवश होकर सूंड़ उठाये चीख रहा था। उसके पास खड़ी

उसकी मादा और सन्तान अपनी सारी शक्ति उसे सरोवर के जल से बाहर निकालने में लगा रहे थे परन्तु वह शनैः २ जल के भीतर धंसा चला जा रहा था। भली भांति देखने पर प्रतीत हुआ कि कोई जल-जन्तु उसे भीतर खेंच रहा है।

ऐरावत पूरे आकार का बीस फूट ऊंचा जीव था, उसके शरीर में अनन्त शक्ति प्रतीत होती थी उसे आश्रय देने वाली मादा और सन्तान भी कम शक्तिशाली न थे परन्तु उन सब की शक्ति उस अज्ञात शत्रु के सामने जो जल के नीचे छिपा बैठा था सफल होती दीख नहीं पड़ती थी।

कुछ क्षण तक मनु इस दृश्य को देखते रहे। इस बीच में ऐरावत की चिंघाड़ों ने आकाश को सिर पर उठा लिया और उन्हें सुनकर वन्य जन्तु चलायमान होने लगे। दीन और दुखी की पुकार सर्वदा से मनु के हृदय को प्रभावित करती रही थी और इस समय भी वह उसे सुनकर अपने आप को भूल गये और थोड़े ही समय में अपने समस्त अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर अपने साथियों सहित सरोवर तट पर पहुंच गये जहां जल और स्थल के यह दो महा योद्धा मल्ल युद्ध में तल्लीन थे। उनके वहां पहुंचने तक वन में से ऐरावतों का एक छोटा सा समूह भी अपने साथी की सहायता को पहुंच गया था और इन सब के यत्न से मगर के शरीर का जो अपनी जाति का भयङ्कर जन्तु था, एक बड़ा भाग जल से बाहर निकल चुका था। उसके जबड़े ऐरावत की एक टांग को जोर से पकड़े हुए थे और उसमें से रुधिर वह २ कर सरोवर के चमकते हुए जल को रक्त वर्ण बना रहा था।

मनु और उनके साथी इस बात को भूल गये कि वह एक अज्ञात देश में भयङ्कर बन्य जन्तुओं के बीच में हैं जो शायद अत्यन्त हिंसक हों। इस बात की ओर से आंखें मूंदकर उन्होंने दुखी ऐरावत को छुड़ाने के लिए मगर के जबड़ों पर हल्ला बोल दिया। उनके परशे भयानक चोटों से उसे काटने लगे और वह थोड़े ही समय में इस बात पर विवश हो गया कि ऐरावत की टांग को छोड़कर उसके छुड़ाने वालों का नाश करे। परन्तु आक्रमण-कारी इस बात से अनभिज्ञ न थे इसलिये जब वह एक ओर झुकता तो दूसरी ओर से कई परशे उस पर पड़ कर उसे हैरान कर देते और उसके सामने वाले भाग कर दूर चले जाते।

कुछ देर तक यह युद्ध चलता रहा। एक ओर मगर अकेला था, दूसरी ओर आठ मनुष्य अपने अस्त्र शस्त्रों के साथ उसका सर्वनाश करने पर तुले हुये थे। थोड़े समय के पश्चात् ऐरावतों के झुण्ड ने इस बात को समझ लिया कि मनुष्य उनके सहायक हैं और वह भी झपट कर मगर पर टूट पड़े अब स्थल के वासी एक ओर थे और जल का वासी दूसरी ओर। सामना बराबर का न देखकर मगर सरोवर की ओर वापिस मुड़ा क्योंकि वह आक्र-मणकारियों के पीछे भागता हुआ स्थल में दूर तक निकल आया था परन्तु जल तक पहुँचने से पहिले २ उसका शरीर कई स्थानों से कट कर खण्ड २ हो गया था।

मगर को मरा हुआ देख कर ऐरावत के झुण्ड ने सूंड़ आकाश की ओर उठाकर ऐसी आवाज़ से चिंघाड़ लगाई मानो विजयोल्लास

में जयकार बुला रहे हैं। उनका सरदार लंगड़ाता हुआ आगे बढ़ा और उसने शीश नवाकर मनु को कन्धे पर उठा लिया उसके अन्य साथियों ने भी उसका अनुसरण किया। अब मनुष्य वनराज ऐरावत पर सवार होकर उस पर राज्य कर रहा था। वह वन्य फल लाकर उसके सामने रख रहे थे और शिशु ऐरावत जंगली फूलों को तोड़ कर उन पर पुष्प वर्षा कर रहे थे।

मनु थोड़े समय के पश्चात् अपनी सवारी से कूद पड़ा, उसने ऐरावत की टांग को उठाकर उस पर एक मर्हम लगाई और अपने शरीर के वस्त्रों को फाड़ कर उस पर पट्टी बांध दी। तत्पश्चात् मनुष्य समूह अपने शिविर को वापिस लौटा, ऐरावत एक जलूस के रूप में उनके पीछे २ चला, जिनमें सब से आगे लंगड़ाता हुआ उनका सरदार था।

———

अंगिरस

उत्तर कुरु और आस पास के प्रदेशों के लोग अपने आप को देवता अथवा देव कह कर पुकारते थे, इसीलिये उनका देश देवलोक के नाम से विख्यात था। उस स्थान पर आकाश में विचरणे और चमकने वाले देवता सदैव दृष्टि के सामने रहते थे, वहां पर लोग पुण्यात्मा और सर्व गुण सम्पन्न थे, इसलिए यदि वह देश देवलोक कहा जाता था तो आश्चर्य नहीं था। परन्तु मनु और सप्त-ऋषियों ने आयु भर में देवताओं में भी कृतज्ञता का वह अंश न देखा था जो त्रिकूट पर्वत के आस पास ऐरावत खंड में आकर वन्य पशुओं में देखा। यह पशु जो किसी आधुनिक भाषा में अपने हार्दिक भावों को प्रगट न कर सकते थे मूक वाणी से उनकी उस कृपा के लिये जो उन्होंने उनके नेता को मगर के पंजे से छुड़ाने में दिखाई थी उन्हें धन्यवाद दे रहे थे। जब से वह सरोवर वाली बात हुई थी जिसे मनु ने किसी की स्मृति में 'श्रद्धा सरोवर' का नाम दे दिया था कोई न कोई ऐरावत सदैव उनके शिविर के निकट पहरे पर देखा जाता था। उनके भोजन के समय नियमानुसार वन के कन्द मूल उनके पास पहुँच जाते थे और

ऐरावत राज स्वयं उन्हें अपने कन्धों पर बिठा कर वन की सैर कराने में आनन्द अनुभव करता था।

समय बीता जा रहा था और उसके साथ उस वन में रहने वाले भयङ्कर सिंह, भेड़िये और वनैले जन्तु अपनी प्रकृति को भूल कर देवलोक से आये हुए इन लोगों के हाथ चाटने के लिये चले आते थे। उनका पृथ्वी पर इन लोगों के चरणों में लोटना तथा अन्य उपायों से प्रेम का प्रकाश करना मनु और ऋषियों के नेत्रों से प्रेमाश्रु बहा देता था। उन्हें यह सब कुछ देख कर विश्वास हो रहा था कि जाने अथवा अनजाने वन के एक वासी के साथ दया करने से उनके लिये इन जीवों के हृदय-पट खुल गये हैं और वह मनुष्य से अपनी स्वाभाविक शत्रुता को भूल गये हैं। वन सब के सब नापे जा चुके थे, श्रद्धा सरोवर के आस पास की देख भाल हो चुकी थी, परन्तु मनु के मन में उस देश के उस भाग को देखने की इच्छा अभी प्रबल थी जिसे उसने प्रथम बार वृक्ष शिखर पर से देखा था, और जहां पर उसे मनुष्यों की वस्ती होने का अनुमान था। वह चाहते थे कि ऐरावत उन्हें उस ओर के भ्रमण में सहायक हों या उन्हें अकेले उधर जाने दें। परन्तु अभी तक इनमें से एक भी बात नहीं हुई थी। परन्तु आज स्वयं ऐरावत् राज उसी दिशा को चले जा रहे थे और उसकी पीठ पर बैठे हुये मनु और सप्त-ऋषि देख रहे थे कि सामने पर्वत के चरणों में सरोवर के एक ओर एक खुला मार्ग है जहां से आगे चारों ओर पृथ्वी के अन्दर गुफायें बनी हैं। ऐरावत के निकट आने तक

वहां कुछ मनुष्य दीख पड़े, परन्तु उनके सामने आते ही वह स्थान शून्य हो गया क्योंकि वह मनुष्य भाग कर गुफाओं में छिप गये।

मनु इस दृश्य को देखकर विस्मित हो गये, परन्तु गौतम बोल उठे "प्रतीत होता है यह लोग इन भीमकाय जीवों के भय से पृथ्वी में घर बना कर रहते हैं जिन में इन जानवरों का प्रवेश असम्भव है"।

ऐरावत ने एक ऊंची चिंघाड़ मारी और स्वयं सरोवर के जल में घुस गया। मनु, गौतम, आदि ऋषि एक ओर खड़े तमाशा देखने लगे। कुछ क्षण तक चारों ओर निस्तब्धता रही, इस के पश्चात् एक ओर किसी के हिलने का शब्द सुनाई दिया। ऋषि लोगों ने मुड़ कर देखा तो एक मनुष्य कोई खाद्य वस्तु रख कर मुड़ा जा रहा था। उन्होंने उसे ठहरने का संकेत किया, वह डरते २ उनकी ओर आया और आते ही उनके चरणों में गिर गया। गौतम ने उसे उठा कर कन्धों से पकड़ लिया और एक ऐसी भाषा में जिसे अन्य लोग समझ न सके कुछ कहा। प्रत्युत्तर में उस व्यक्ति का मुँह खुला और पता नहीं उस ने क्या कहा।

कुछ देर तक दोनों में उत्तर प्रत्युत्तर होते रहे जिसे बीच में ही छोड़ कर गौतम ने मनु से कहा :—

गौतम—इस व्यक्ति के कथन से प्रतीत होता है कि देवलोक से कोई अन्य महात्मा भी इधर आये हैं जो इन लोगों के हाथों में पड़ गये हैं।

इसी वीच में बस्ती के दूसरे कोनों में से लोग शनैः २ बाहर आने लगे-उनके हाथों में भी पहिले व्यक्ति की भांति कोई न कोई खाद्य वस्तु थी जिसे वह एक ओर रखकर जाना चाहते थे।

गौतम ने अपने साथियों को वताया कि उन लोगों का ऐरावत के साथ कोई इस प्रकार का समझौता है कि जब वह इधर आयें तो यह इन्हें इस प्रकार के उपहार से प्रसन्न करनेका यत्न करें, नहीं तो वह उनकी वस्तुओं को मसल डालते हैं।

परन्तु मनु और अन्य ऋषि यह जानना चाहते थे कि देव-लोक के उस महात्मा के साथ क्या बीती जो इन लोगों के हाथों में पड़ा है।

गौतम के प्रश्नोत्तर का परिणाम यह निकला कि "इन लोगों ने उसे वांध रक्खा है", इस से अधिक कुछ पता नहीं चल सका।

पर्वत श्रेणी के एक ओर ऊँचे शिखरके निकट शस्त्रधारियों का एक जुट खड़ा था उनके एक ओर एक व्यक्ति था, जिस के व्यक्तित्व से उसके शासक होने का ज्ञान होता था। दूसरी ओर एक अन्य व्यक्ति था, जिस का वर्ण श्वेत, मुख तेजोमय और आकार दीर्घ था। उसके हाथ पांव वंधे थे और शस्त्रधारी उसे खींच २ कर पर्वत शिखर के निकट ले आये थे। जनता उसकी ओर संकेत करके निराले ही नारे लगा रही थी जिन में से यदि कोई शब्द समझ में आता था तो वह केवल "देव" था। इससे अनुमान होता था कि यह शब्द इधर की जनता में अच्छे अर्थों में नहीं वरता जाता। मनु और ऋषियों ने यह शब्द सुने तो शीघ्र २ चलने लगे। ऐरावत उनके पीछे था।

जिधर से यह लोग आ रहे थे जन समूह की उधर पीठ थी, इसलिये जब तक वह उनके निकट न पहुंच गये उनके आने का किसी को ज्ञान न हुआ, क्योंकि मार्ग पहाड़ी और पेचदार था। और ज्यों ही ऐरावत का पर्वत सरीखा शरीर दृष्टि में आया वह सिर पर पांव रख कर भागे। उस स्थानमें शस्त्रधारियों के अतिरिक्त और कोई न रहा। यह देखकर उनके शासक ने आवेश में आ कर कोई आज्ञा दी जो स्यात यह थी कि आने वालों को आगे बढ़ने से रोक दिया जाय। परन्तु शस्त्रधारियों पर ऐरावत का भय इतना छा रहा था कि वह उसके सामने खड़े होने की हिम्मत न कर सके। इसलिये शासक स्वयं शस्त्र संभाल कर लपका, परन्तु एक ही क्षण में ऐरावत ने उसे सूँड की लपेट में ले कर अपने भारी पांव से मसल दिया।

सरदार की मृत्यु देखकर सेनानी भागे, परन्तु ऐरावत का क्रोध प्रदीप्त हो चुका था और वह उनका मार्ग रोक कर उन्हें नष्ट भ्रष्ट करने लगा। उस समय उनका चीत्कार आस पास के जंगल को गुँजा रहा था।

मनु आगे बढ़ कर वन्दी के समीप पहुँचे और खड्ग के एक ही वार से उसके हाथ और पांव के बन्धन काट कर उसे मुक्त कर दिया। वन्दी आंखें मूँदे समाधिस्थ था, उसे अपने चारों ओर के हालात का कुछ ज्ञान न था। क्योंकि वह इस शरीर को छोड़ने के पहिले उस परिवर्त्तन के लिये तैयार होना चाहता था जिसे लोग

मृत्यु के नाम से पुकारते हैं। पाश टूटते ही उसकी समाधी खुली और उसके मुख से निकला "कौन ? मनु ?"

मनु ने नेत्र उठा कर देखा तो बोल उठे, "महर्षि अङ्गिरस ?"

दोनों विस्मित थे और जिस समय मनु के अन्य साथी अङ्गिरस से गले मिले, तो उनके मुख से सहसा निकला "अरे ! यह सौभाग्य ! गौतम, भरद्वाज, वशिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, कश्यप, अत्रि !!"

फिर सब के पूछने पर अङ्गिरस ने अपनी कथा सुनाते हुये कहा "इधर के लोग अपने आप को "आर्य्य" कहते हैं और वह उसी जाति से सम्बन्ध रखते हैं जिस से उत्तर कुरु के वासी। आप यह सुनकर विस्मित होंगे कि इनका महापितर आप का कनिष्ठ भ्राता यम वैवस्वत है, जिसे इन लोगों की भाषा में "जिम विवांगत" कहा जाता है। आप लोगों ने इन देशों में ऐरावत अधिक जानकर इसका नाम ऐरावत खंड रक्खा परन्तु यह लोग इसे "आर्य्याना वजो" कहते हैं। इस नदी का नाम जिसे आप ने नाव में पार किया था "दैत्य" है। इसके अतिरिक्त यहाँ और भी नदियाँ बह रही हैं। यह सरोवर जो सामने दृष्टिगोचर हो रहा है..........."

मनु—इसे हमने "श्रद्धा सरोवर" का नाम दिया है।

अङ्गिरस—आप इसे जो चाहें कहें, परन्तु इधर के लोग इसे, "अरज़वो स्पर अनाहित" के नाम से पुकारते हैं जिस का अर्थ 'ऊँची, शक्तिमान पवित्र' है। इसी नामसे इस स्थानपर इसकी पूजा की जाती है। इस पर्वत का नाम "हिकेरिया" है।

❀ यहाँ के वासी अत्यन्त सुन्दर, बुद्धिमान और चतुर हैं। आपको स्मरण होगा भगवान् मत्स्य ने आपको भावी विप्लव की सूचना दे कर चेतावनी दी थी। उसी बात को इधर के सब लोगों तक पहुंचाने के लिये हम इधर घूम रहे हैं। परन्तु जैसे आपने उसे सुनकर उसका निरादर किया था उसी प्रकार इन लोगों ने भी हमें प्रजा में आतन्क फैलाने वाला समझा, और जब हमने भावी विपत्तियों का चित्र भली प्रकार खोलकर इनके सामने रखा तो यह लोग हमें पाप, बुराई, असत्य का प्रचारक और ईश्वर जाने किस २ पाप का पापी

❀ ज़रतुशती (फारसी) लोगों की पुस्तक "दुनियाए मैनोगे खिरद" स्कन्ध "गोमानीक" त्रिगार सद्दार बाब ४४–१७–२४ में लिखा है:—"इलहाम बताता है कि आर्याना वैजो में दस मास सरदी और दो मास गर्मी का मौसम रहता है, ग्रीष्म के यह दो मास भी जल, पृथ्वी और वृक्षों के हिसाब से ठंडे होते हैं। कथन किया गया है कि अहुरमज़द ने आर्याना वैजो को सब स्थानों और प्रदेशों से बढ़ कर बनाया है। इसकी विशेषता यह है कि लोगों की आयु तीन सौ वर्ष की होती है और वृषभ और भेड़ों की ड़ेढ सौ साल। वहाँ दुख और रोग नहीं होता, लोग असत्य नहीं बोलते, लोभ नहीं करते, यदि दस मनुष्य मिलकर एक रोटी भी खायें तो प्रसन्न रहते हैं। चालीस वर्ष के पश्चात् एक दम्पति पुरुष स्त्री से एक सन्तान उत्पन्न होती है। उनका कानून नेकी है और उनका धर्म मौलिक विश्वास। वह जब मरते हैं तो पवित्र होते हैं। उन का धर्म गुरु गोपतो और राजा फरिश्ता "सरोश" हैं।

कहने लग गये। परन्तु हम जानते हैं कि जिस प्रकार देवलोक वासी विपत्ति आ पड़ने के पश्चात् मत्स्य जी की चेतावनी को याद करते थे उसी प्रकार यह लोग भी हमारे कथन का आदर करेंगे, परन्तु उस समय जब आपत्ति से निकलने का कोई मार्ग नहीं रहेगा। इसलिये इनके विरोध की उपेक्षा करके भी हम अपने धर्म पालन में तत्पर हैं·········"

मनु—(बात काटकर) क्यों! देवलोक में क्या हुआ?

अङ्गिरस—वही जिसकी भविष्यवाणी भगवान् मत्स्य ने की थी। ज्वालामुखी फटे, समुद्र में तूफान आया, नदियों में बाढ़ आई, और देवलोक का एक भारी भाग समुद्र के नीचे चला गया!

मनु—(चौंक कर) क्या सचमुच यह सब कुछ हो गया?

अङ्गिरस—और अभी भीषण हिम वर्षा होने वाली है! जल की मार से जो लोग बच गये हैं, अग्नि के कोप से जो शेष रह गये हैं, वह हिम के नीचे दब कर सदा की नींद सो जायेंगे······परन्तु अभी कुछ समय शेष है, हमें शीघ्र, अति शीघ्र, यहां से प्रस्थान कर देना होगा, क्योंकि अल्पकाल में ही नदियां जम जायेंगी, समुद्र जम जायेंगे, पर्वत शृंगों पर हिम ही हिम होगी। उत्तर का समस्त देश श्वेत रंग में रंगा जायेगा। इसलिये यहां से चलने की तैयारी करो। नदी से बाहर निकलने पर भगवान् मत्स्य मिलेंगे उन्होंने कुछ सामग्री तैयार कर रक्खी है, उसी से हम लोग इस जगत की सूचना बाह्य जगत को दे सकेंगे।

श्रद्धा

भूल जाऊं ? किस को ? कहने वाले क्या कहते हैं और क्या जानते हैं? "उन्हें" भूलूंगी उस समय जब अपने आपको भूलूंगी। पर मैं कौन हूँ ? श्रद्धा ! यह किस का नाम है ? अस्थि, चर्म की बनी हुई एक स्त्री का ? उसके शरीर को जन्म दिया माता पिता ने, कब ? यह मैं नहीं जानती, माता जी जानती होंगी। मैं तो यह जानती हूं कि देवलोक के एक दम्पति ने इस शरीर को लाड़ से, चाव से पाला पोसा और बड़ा किया, उसे वह सारे कार्य सिखाये जो इस पृथ्वी पर आकर स्त्री पुरुष के लिए आवश्यक हैं। उसे पाक विद्या सिखाई, उसे वस्त्र पहिनना सिखाया, उसे वस्त्र बुनना और बनाना सिखाया, उसे परशा चलाना सिखाया, उसे खांडे का उपयोग सिखाया, उसे वेदों का ज्ञान दिया। इस बीच में "उन" के दर्शन हुए। क्या मुझे वह समय भूल सकता है जब मुझे उन के प्रथम दर्शन का सौभाग्य हुआ था ? सूर्यदेव चमक रहे थे, चारों ओर पुष्प विकसित थे, मैं धनुष चलाने का अभ्यास कर रही थी, और इस कार्य के लिये मुझे थोड़े से बाण मिले थे। मैं अपने उद्यान में एक पुष्प को लक्ष्य बना कर अभ्यास कर रही थी। पहिले मैंने उस कुसुम को वेधन किया, फिर उसके साथ वाले फूल की एक २ पत्ती को बाण से उड़ाया और फिर उसके भीतरीय जीरे

को निशाना बनाया। उस समय मेरे वाण समाप्त हो गये और मैं उन्हें इकट्ठा कर रही थी। मेरे अन्य वाण प्राप्त हो चुके थे केवल एक अप्राप्त था। मैं उसे ढूंढ़ रही थी और वह मेरे लक्ष्य के आसपास कहीं नहीं था। मैं विस्मित थी कि वह कहां गया…… और फिर…उद्यान की दीवार के दूसरी ओर से………एक आवाज़ आई, "देवी! आप का वाण दीवार को फोड़कर इस ओर निकल आया।" मैंने नेत्र उठा कर देखा तो सामने एक मूर्ति दृष्टि-गोचर हुई। गौरवर्ण, सुनहरी केश, भरा हुआ मण्डल, जैसे स्वयं मदनदेव मूर्तिमान हो गये हों। मैंने वाण उनके कर-कमलों से लेते हुये उनकी ओर देखा। वह मुस्करा रहे थे। मेरी दृष्टि उनके चेहरे पर न ठहर सकी। उन्होंने कहा "इतनी शक्ति? देवी तुम तो स्वय शक्ति रूप हो।" मैंने नेत्र झुका लिये परन्तु हृदय ने कहा, "वाण की खोज के लिये इनका धन्यवाद करना आवश्यक है" और मैं किसी के सन्मुख यह प्रगट करना न चाहती थी कि कोई भी व्यक्ति मुझे भयभीत कर सकता है। इसलिये मैंने धैर्य धारण करके उन्हें कहा "इस कृपा के लिये धन्यवाद।" वह फिर मुस्कराये और उनके मुख से निकला, "धन्यवाद की क्या बात है? मैं भी इधर वही अभ्यास कर रहा था जो आप कर रही हैं। मैंने अपने वाणों में एक वाण अधिक देखा और वह आपका वाण था।"

तत्पश्चात हमारा अभ्यास बढ़ता गया और अल्प काल में ही मैं अच्छे धनुर्धारियों में गिनी जाने लगी। हमारा परिचय भी अब बहुत आगे चला गया और मुझे प्रतीत हुआ कि वह न केवल उत्तर

कुरु के सब से उत्तम योद्धा हैं, बल्कि अति उत्तम विद्वान् भी। ब्रह्मविद्या, धनुर्विद्या, कृषि विद्या, अर्थ विद्या अर्थात् कौनसी विद्या है जिसके वह विशेषज्ञ नहीं। मैं उनके गुणों पर एकान्त में विचारा करती थी और आकांक्षा करती थी कि मैं भी उन गुणों को सीख सकूं……ओह! ओह! उनके चरणों में बैठकर मैंने क्या कुछ नहीं सीखा?……और फिर जब उत्तर कुरु की जनता ने एक मत होकर उन्हें अपना महा पितर चुना………न जाने मैं उस दिन इतनी आनन्द विभोर क्यों थी?……स्यात इसलिये कि उन्हें महा पितर बनाने में सारा उत्तर कुरु प्रसन्न था, फिर मैं आनन्दित क्यों न होती……वह यज्ञ विद्या में कितने निपुण थे! प्रकृति के छिपे हुये भेदों को समझ कर उन्होंने यज्ञ विद्या के द्वारा विश्व की दैवी शक्तियों से काम लेने में कितना अभ्यास किया था। यह अब देवलोक का एक २ व्यक्ति जानता है……देवलोक……
आह! देवलोक अब कहां है? वह सब कुछ स्वप्न हो गया……
उस समय एक दूसरे द्वीप में ज्वालामुखी पर्वतके उदर में शूल सा उठ रहा था, वह इस पीड़ा से कराह रहा था, जब उन्होंने ऐरावत-खण्ड की ओर जाने का विचार किया……क्या मैं भूल जाऊं उस समय को जब वह मुझे अन्तिम दर्शन देने के लिये आये थे? उषा देवी सुमेरु पर्वत पर नृत्य कर रही थी, सप्त ऋषि आकाश में अपना चक्कर समाप्त कर रहे थे, जब उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर कहा…… उस समय उस झुटपुटाते हुए अन्धियारे में उनके नेत्रों के अश्रु मुझे साफ दीख पड़ते थे—हां मेरे हाथ को

अपने हाथ में लेकर उन्होंने कहा, "श्रद्धा ! भगवान् जाने फिर मिलने का अवसर मिले या न मिले, इसलिये इस समय चला आया। मुझे प्रतीत था कि इस समय तुम उद्यान के पुष्पों के मध्य में होगी। दिन निकलते ही हमारी नावें क्षीर सागर की यात्रा करेंगी"। मैंने बात को भली प्रकार न समझ कर कहा "तो आप दो चार पहर के पश्चात् लौट आयेंगे ?"

"मैं स्यात दीर्घ काल पर्यन्त न लौट सकूं, किसी अन्य देश में जा रहा हूँ जिसे पहिले नहीं देखा", उन्होंने कहा।

मैं कह सकती हूं कि मैं दुर्बल हृदय की स्त्री नहीं हूं, फिर भी इन शब्दों को श्रवण करके मेरे पाओं तले से पृथ्वी निकल गई और अश्रु भरे नेत्रों को पोंछ कर मैंने कहा, "क्या आपकी यह यात्रा रुक नहीं सकती ?" "नहीं, सब कुछ निश्चय हो चुका है, सप्त-ऋषि मेरे साथ प्रस्थान कर रहे हैं, देवलोक वासियों और आस-पास के देशों में सम्बन्ध स्थापित करने के लिये यह आवश्यक है और हमें अब जाना ही होगा।"—उनकी जिह्वा से निकला। इस अटल निर्णय को सुनकर मैं स्तब्ध रह गई। मुझे चुप देख कर उन्होंने फिर कहा "श्रद्धा ! मुझे ज्ञात है तुम क्या कहना चाहती हो, जिह्वा से कहो या न कहो मैं तुम्हारे शब्दों को तुम्हारे हृदय के भीतर से सुन रहा हूं, परन्तु प्रार्थना करता हूं कि देश और जाति के लिये मेरा जो धर्म है उसे पूर्ण करने से मुझे मत रोको।"

उस समय मेरे मुख से निकला, "श्राद्ध देव ! भगवान् न करें श्रद्धा आपको अपने धर्म से विमुख करने का कारण बने, परन्तु मेरे हृदय में बुरे २ विचार उत्पन्न हो रहे हैं।"

मेरी बात काट कर उन्होंने कहा "श्रद्धा ! जीवन में कष्ट आया करते हैं, आपत्तियां भी आती रहती हैं, परन्तु जब यह ज्ञात हो कि हम धर्म के मार्ग पर चल रहे हैं तो कष्ट कष्ट नहीं रहते, आपत्तियां प्रसन्नता का कारण बन जाती हैं। इसलिये इन बुरे विचारों को हृदय से निकाल दो। शुभ संकल्प जगत में एक अमोघ अस्त्र है, उसका अपने शरीर और इस जगत की रक्षा के लिये उपयोग करो।"

मैंने उत्तर दिया, "आपके यह शब्द आपके जाने के पश्चात् मुझे सहारा देंगे" तब उन्होंने दीर्घ मौन के पश्चात् मेरे मुख की ओर निहार कर कहा, "और श्रद्धा का प्रेम सब कष्टों और आपत्तियों में मनु को उत्साह प्रदान करेगा"।

आज तक हम दोनों में प्रेम के विषय पर वार्त्तालाप न हुआ था इसलिये उनके मुख से यह शब्द सुनकर मेरा शिर झुक गया। उन्होंने अल्पकाल की प्रतीक्षा के पश्चात् कहा, "श्रद्धा ! तुम्हारा मौन मुझे यह पूछने को उत्साहित करता है कि क्या तुम मेरे वापिस लौटने तक मेरी प्रतीक्षा करोगी ?" उस समय मेरा हाथ उनके हाथ में था और मैंने उसकी ओर संकेत करके कहा "क्या यह पाणि आपने ग्रहण नहीं किया ? अपने कर-कमलों में इसे ले कर क्या आपने इसे छुड़ाने की शक्ति रहने दी है ?............
...."

यह सब कुछ होने पर क्या मैं उन्हें भूल सकती हूं इसलिये कि देवलोक आज जल-निमग्न हो गया है और स्यात उनका शरीर

भी अब इस जगत् में नहीं रहा ? छिः ! छिः ! यह क्या विचार है ! निःसन्देह हम मिलेंगे और अवश्य मिलेंगे, इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में, इस शरीर के साथ नहीं तो दूसरे शरीर के साथ............हम एक दूसरे के लिये बने हैं, कोई शक्ति हमारे आत्माओं कोएक होने से रोक [नहीं सकती। अस्थि, चम के शरीर उनके मार्ग में बाधा नहीं बन सकते। श्रद्धा की श्रद्धा उसके जीवन का सहारा रहेगी और वह इस शरीर में प्राण रहते, बल्कि उसके पश्चात् भी, श्राद्धदेव का मार्ग देखती रहेगी"।

महा प्रस्थान

जल निमग्न प्रदेश के आस पास के लोग दीन हीन अवस्था में भागे। प्रलय के आगमन और ज्वालामुखी के विस्फोट से त्पन्न हुये भूकम्प से चारों ओर आतंक फैल गया। प्रत्येक मनुष्य के मुख पर हवाइयां उड़ने लगीं। उस प्रारम्भिक युग में जनता का धन पशु धन था। एक २ व्यक्ति के पास गाय, बैल, घोड़े, खच्चर सैंकड़ों नहीं सहस्रों की गणना में थे। उन्हें एकत्र करना सुगम न था, परन्तु जल का प्रवाह बढ़ रहा था और कोई नहीं कह सकता था कि अगला क्षण ठोस पृथ्वी पर व्यतीत करने के लिये जीवित रहने का अवसर मिलेगा या नहीं। इसलिये शीघ्रता में जो भी गृह वस्तुएं हाथ में आई और जो भी पशु एकत्र हो सके उन पर उसे लाद कर सब लोग भगवान् भरोसे चल खड़े हुये। परन्तु किसी को भी पता न था कि उसने किधर जाना है। केवल एक बात निश्चित थी कि ध्रुव प्रदेश अब सुरक्षित स्थान नहीं रहा, उसे छोड़ कर दक्षिण की ओर जहां भी जिसके सींग समायें चला जाय। भगवान् मत्स्य के शब्द ईश्वरीय शब्दों का रूप धारण करके सबके कानों में गूंज रहे थे, और प्रत्येक व्यक्ति यह कहता सुना जाता था कि उनके रूप में स्वयं परमात्मा ने जनता को चेतावनी दी थी, और जलविप्लव के पश्चात् हिमपात

का होना अटल है इसलिये आतंक, घबराहट और बेचैनी बढ़ रहे थे।

देवलोक वासी अब तक पवित्र और सात्विक जीवन व्यतीत करते रहे थे। उनके यहां उत्तम, मध्यम, लघु, गुरु का कोई भेद भाव न था। सभी मनुष्य अपने और अपने पास पड़ौसियों को एक दृष्टि से देखते थे। इस लिये यह उनकी बुद्धि से परे की बात थी कि उन पर यह आपत्ति क्यों आई?

परन्तु यह समय विपत्ति के कारण सोचने का नहीं था, आवश्यकता उससे बचने और उसे पार करने की थी। इसलिये समस्त देश एक ही उद्देश्य को सामने रख कर कार्य कर रहा था और वह था उत्तर कुरु को त्याग कर नये देशों की ओर प्रस्थान। उस समय प्रत्येक अपना नेता आप था, क्योंकि उन का निर्धारित महापितर देश से बाहर था और साधारण विचार यह था कि वह विप्लव के आरम्भ में ही अतल जल के गर्भ में समा चुका है। उस का कनिष्ठ भ्राता यम बाल्यकाल से ही गुम था। सप्त ऋषि जो इस अवसर पर जनता को ठीक मार्ग दिखा सकते थे (क्योंकि उन में से प्रत्येक देशाटन में निपुण होने के कारण देश २ और स्थान २ के भूगोल को जानता था) भी उपस्थित न थे। इस कारण सब की दृष्टि नवयुवकों के उस छोटे से समूह की ओर थी जो स्वयं को भूल कर, व्यक्तिगत सुख दुख की उपेक्षा करके, यहां, वहां, सब स्थानों पर लोगों का उत्साह बढ़ा रहे थे और उन्हें आपत्ति से त्राण पाने में सहायता दे रहे थे। मित्र, वरुण,

अग्नि, आदित्य उनमें से कुछ के नाम थे। परन्तु इन सब की सफलता का रहस्य श्रद्धा का अटल आशावाद था। वह अब अपने आप को "श्रद्धा मानवी" के नाम से पुकारे जाने में आनन्द अनुभव करती थी और उसका यह पूर्ण विश्वास था कि देवलोक नष्ट हो गया तो कोई बात नहीं, उत्तर कुरु जल निमग्न हो गया तो परवाह नहीं है, वह जाति जो इन देशों को बसा रही थी नष्ट भ्रष्ट नहीं हो सकती और नहीं होगी। वह कहा करती थी कि "यह प्रलय और यह आपत्ति उस पुनर्निर्माण के लिये जो भविष्य में होने वाला है आवश्यक है"। उसका कथन था कि "दुख की आन्धी बीत जायेगी, तदुपरान्त उसका परिणाम समस्त संसार के लिये अत्यन्त लाभदायक होगा। क्योंकि प्रकृति के विधान में कभी त्रुटि नहीं होती। किसी एक की हानि, ज्ञातियों की दृष्टि में बहुतों की भलाई का कारण होता है"। उस का अमर विश्वास उसके संगियों में नव जीवन संचार कर रहा था और वे सब यह अनुभव करने लग गये थे कि उन्हें दूर देशी उत्तर कुरु से निकाला जा रहा है इसलिये, कि वह उस संस्कृति को जो उन्हें दी गई है अन्य देशों में फैलायें। उन्हें देवलोक की पवित्र भूमि से वंचित किया जा रहा है ताकि वह पवित्र वेद विद्या को जो उनके जीवन का भाग बन चुकी है भूमण्डल पर फैलायें। इसलिये उन के अन्दर वह भावना उत्पन्न हो रही थी जो किसी भी धर्म के प्रारम्भिक उपदेष्टाओं में हुआ करती है। परन्तु जगत ऐसे उपदेष्टाओं के कथन को सुगमता से नहीं माना करता। उत्तरकुरु के लोगों

के साथ भी वही व्यवहार हुआ, क्योंकि जब उन्हों ने अपने बाल बच्चों और पशु-धन के साथ अपने पैतृक देश से पांव बाहर निकाला तो अन्य देश वासी उनके साथ सहानुभूति की अपेक्षा पग २ पर उनके मार्ग को कंटकाकीर्ण बनाने लगे।

उन देशों के लोग उस समय सभ्यता की उस सीमा तक नहीं पहुंचे थे जहां तक उत्तर कुरु के लोग पहुंच चुके थे। उन्होंने देव लोगों के आने को अपने देश पर एक भारी आक्रमण समझा। इसी कारण वह पहिले तो एकाध और फिर एकत्रित होकर देवताओं को हैरान करने लगे।

दोनों देशों की भाषाओं के जानने वालों ने बीच बचाव के लिये उन्हें यह समझाने की चेष्टा की कि देव लोग उनके देश में किसी नीच भाव से नहीं आये, वल्कि आपत्ति में फंस कर, घरवार नष्ट होने के उपरान्त प्राण रक्षा के लिये, शरणार्थी हैं और ज्यों ही कोई अच्छा स्थान मिल गया तो चले जायेंगे। परन्तु वनों की समाप्त होती हुई घास और वृक्षों के नष्ट होते हुये फल फूल आदि वासियों को यह विश्वास दिला रहे थे कि उन के देश इतने नवागन्तुकों के भार को सहन करने में असमर्थ हैं। इसलिये यदि यह लोग अल्प काल तक भी यहां रह गये तो उनकी अपनी दशा नवागन्तुकों से अच्छी नहीं रहेगी। इसलिये प्रश्न जीवन के लिये संघर्ष का रूप धारण करने लगा :—

"एक ओर खौलता हुआ समुद्र। दूसरी ओर मनुष्य जो असुर रूप धारण करके हमें सागर में समाधि देने को तुल रहे हैं, इन

दोनों में से आपको एक चुनना होगा।" देवताओं की एक सभा को सम्बोधन करके श्रद्धा ने कहा :—

"हमने उन्हें समझाने का यत्न किया, हमने उनसे प्रार्थना की कि हमें अपने देश से आगे जाने का मार्ग दे दें ताकि हम अन्य देशों में अपने भाग्य की परीक्षा कर लें, पर वह न तो हमें आगे जाने देंगे, न ही अपने देश में रहने देंगे! देव लोक के विध्वंस ने हमारे लिये पीछे जाने के समस्त मार्ग बन्द कर दिये हैं। अब केवल एक ही मार्ग है और वह यह कि शस्त्र सम्भाल कर, तलवारें सूंत कर, त्रिशूल तान कर, इन लोगों के शरीरों पर से अपना मार्ग बनायें। यह देव लोक की गाथाओं के विरुद्ध है, यह देवताओं की प्रकृति के प्रतिकूल है और इसीलिये हमने प्रेम से, प्रार्थना से, उत्साह से, इस देश के वासियों को समझाने का यत्न किया। परन्तु जान पड़ता है कि इनकी प्रकृति हम लोगों से भिन्न है। जो बातें हमारे लिये सहल हैं वह यह पीले और काले रङ्ग वाले पहेलियां समझते हैं। इसलिये मैं समझती हूं अब आपत्ति काल आ गया है और उसका धर्म सदैव से साधारण धर्म से भिन्न रहा है, इसलिये हमें अपना भविष्य कार्य-क्रम साधारण धर्म नहीं बल्कि आपद काल को जान कर बनाना होगा।"

मित्र—निःसन्देह अपनी जाति की प्राण रक्षा के लिये हमें साधारण धर्म को त्यागना होगा।

वरुण—श्रद्धा देवी के मन में क्या है? वह कौन सी कार्यवाही किया चाहती हैं।

श्रद्धा—मैंने इस विषय पर विचारा है परन्तु जब तक यह ज्ञात न हो कि सारी जाति एक मत है मैं अगला पग उठाने की सम्मति नहीं दे सकती।

सारे के सारे—हमें जीवित रहने के लिये पृथ्वी माता का कोई भाग अपनाना होगा।

श्रद्धा—आपका कथन सत्य है। अदिति के एक २ पुत्र का माता आदिति पर कुछ-न-कुछ अधिकार है और जब तक हम देव-लोक में थे हमने इस सिद्धान्त को अपने जीवन पर घटाया। उस देश में रहते हुये हमारी जाति ने जगत जननी के प्रत्येक पुत्र को अपनाया। हमारे यहां जो भी आया हमने उसे देव की पदवी दी। हमने अपने देश में किसी को उच्च समझा न नीच। हमारी जाति ने स्त्री और पुरुष में कोई भेद न रक्खा। दोनों को एक से अधिकार दिये क्योंकि दोनों ही इस जगत् को चलाने के लिये आवश्यक हैं। विवाह में, सम्पत्ति में, अन्य बातों में, हमने देशी, विदेशी, स्त्री, पुरुष को एक समझा और यही कारण है कि आज हमें यह व्यवहार समझ में नहीं आता जो जम्बू द्वीप के लोग हमारे साथ कर रहे हैं। उन्हें वह धर्म सिखाने के लिये जो मनुष्य, पशु पक्षी को एक ब्रह्म का स्वरूप समझने की शिक्षा देता है हमें अब शक्ति का प्रयोग करना होगा। आत्मिक शक्ति और शारीरिक शक्ति दोनों का उपयोग करना होगा। परन्तु इन दोनों शक्तियों का आपत्ति काल में एक ही पुरुष एक समय में उपयोग नहीं कर सकता, इसलिये हमें कार्य का विभाग करके ब्रह्म

और क्षत्र को अलग २ करना होगा। क्षत्र का कार्य होगा अपने बाहुबल से प्रजा (विश) की रक्षा करना, उसके धन धान्य और पशुओं को बढ़ाने में सहायक होना। ब्रह्म, यज्ञ याज्ञ से प्रकृति की (दैवी) शक्तियों को वश में करके क्षत्र की शक्ति को बढ़ाने, प्रजा को प्रत्येक प्रकार की विद्या सिखाने और नये २ अस्त्र-शस्त्र आविष्कार करने का काम करेगा। इन दोनों की छत्र छाया में विश धन धान्य और पशुओं को बढ़ा कर ब्रह्म और क्षत्र को कर्त्तव्य पालन के योग्य करेगा। यह केवल मेरा अपना मत नहीं है, बल्कि उस महा पुरुष के जबरदस्त मस्तिष्क की सूझ है जिसका नाम धारण करने का मुझे गौरव है। (जरा सस्ता कर) यह मत महाराज मनु का है जो उनके वेद विद्या के गूढ़ तत्वों को समझने का परिणाम है। आपके उस महापितर के साथ वार्त्तालाप में मुझे यह शिक्षा मिली है। (माथे से पसीना पोंछते हुये) यदि आप इस बात को स्वीकार करते हैं तो उचित होगा कि जाति में से वह लोग जो ब्रह्म और यज्ञ विद्या के विशेषज्ञ और उसमें रस लेते हैं अपनी आत्मिक शक्ति का परिचय दें, और वह जिन्होंने अस्त्र चलाने में अधिक सफलता प्राप्त की है शत्रु (मुझे इस शब्द को माता अदिति के किसी भी पुत्र के लिये वर्त्तते हुये लज्जा आती है) को अपनी शारीरिक शक्ति से इस बात पर बाधित करें कि वह हमारी सन्तान को अपनी सन्तान के समान समझता हुआ उन्हें पृथ्वी माता की गोद में खेलने के लिये स्थान दे। हां हां ब्रह्म और क्षत्र मिलकर दस्यु लोगों पर विजय प्राप्त करें, और विश

अपने पशु धन को लेकर आगे बढ़ने का सामान करें। यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि इस युद्ध का उद्देश्य दस्यु लोगों से उनका देश छीनना नहीं बल्कि अपना सिर छिपाने के लिये पृथ्वी माता का कोई कोना ढूंढ़ना है।"

श्रद्धा देवी मौन हुई तो सभा ने करतल ध्वनि और साधु २ के शब्द से उनकी मन्त्रणा को स्वीकार किया और थोड़े ही समय में बिखरे हुये देवता लोगों को दस्यु लोगों के आक्रमणों से सुरक्षित करने के लिये स्वयंसेवक सेना की नींव रक्खी गई, जिसके पहिले सेनापति मित्र, वरुण और अग्नि नियत किये गये।

———

नाव मंझधार में

शबे तारीको बीमे मौज व गर्दाबे चुनीं हायल।
कुजा दानन्द हालेमा सुबक साराने साहिल हा॥

(रात अंधेरी है। भयानक लहरें उठ रहीं हैं। भयंकर भंवर पड़ रहे हैं। सागर तीर पर आराम से चलने वाले क्या जानें हमारी दशा को)।

दैत्य नदी के मुहाने पर मनु और उनके साथियों की नाव पहुंची, तो सामने एक बड़ी नाव खड़ी थी जिस पर खड़ा कोई व्यक्ति उन्हें संकेत से अपनी ओर बुला रहा था। नाव और निकट पहुंची तो यह शब्द उनके कान में पड़े—"तुम लोगों ने बहुत देर लगादी, अब यहां से निकलने में बहुत कठिनता होगी। शीघ्रता करो, समय अमूल्य है और हम उसे गंवा नहीं सकते।"

उत्तर में मनु ने वक्ता के चरणों में झुक कर कहा—"भगवन्! ज्यूं ही हमें महर्षि अंगिरस ने संदेश दिया हम आर्य बैजो से चल पड़े, विलम्ब उतना ही हुआ है जितना आवश्यक था"।

हाथों हाथ नावों का सामान बड़ी नौका में लादा गया और नाविकों को उनके परिश्रम का पारितोषिक देकर मनु उनसे विदा हुये।

नई नाव अज्ञात सागर में चल रही थी जिसमें जहां तक दृष्टि जाती थी जल के सिवाय कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। सागर

क्रुद्ध था परन्तु नाविक चतुर था, जिसका मार्ग प्रदर्शन मत्स्य जी कर रहे थे।

कुछ काल तक निस्तब्धता रही, जिसमें भयंकर लहरों के थपेड़ों और वायु के प्रबल झोंकों की आवाज़ के अतिरिक्त कोई शब्द सुनाई न देता था। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि कई महान् शक्तियां क्षीर सागर को ऐसे मथ रही हैं जैसे दधि और दूध को मथनी। नाव कभी सैंकड़ों गज़ की ऊंचाई पर चढ़ी हुई आकाश को जाती दीख पड़ती थी और कभी सिर के बल पाताल में गिरती हुई दृष्टिगोचर होती थी। चारों ओर फेन के बादल उड़ २ कर नाव वालों को भिगो रहे थे। इधर, उधर, दूर, निकट न तो किसी बस्ती का चिन्ह था, न ही दूर क्षितिज पर कोई अन्य नाव दिखाई देती थी।

तरंगों के भयंकर चीत्कार में मत्स्य जी के मुख से ये शब्द निकले।

"उस स्थान पर श्वेत खण्ड था!"

उन की उठी हुई उंगली की ओर सब की दृष्टि चली गई, परन्तु सामने कुछ भी दृष्टिगोचर न हुआ। उन्हें नेत्र फाड़ कर देखते हुए जान कर मत्स्य जी ने फिर कहा—"वह खंड इस समय जल गर्भ में है। कभी उसका वेग कम हुआ। तो शायद पृथ्वी का भाग दीख पड़े।"

मनु—और उत्तर कुरु?

मत्स्य—उस देश का अधिकांश भी अब जल के नीचे है।

मनु—और देवता लोग ?

मत्स्य—जिन्होंने हमारी चेतावनी की ओर विशेष ध्यान दिया उनके जीवन बच गये, शेष सागर के उदर में समा गये !

मनु का मुख विकृत हो गया। उसका ध्यान कहीं से कहीं पहुंच गया। कानों में एक गुंजार आई, कलेजा धक से रह गया ! क्या श्रद्धा जल के नीचे चली गई ? आत्मा ने इस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया, परन्तु मत्स्य जी का स्वर फिर सुनाई दिया।

मत्स्य—उस दिन तुमने कहा था कि तुम्हारे कहे पर विश्वास करके देवलोक के वासी अपने पवित्र, सुन्दर और उपजाऊ देश को कैसे छोड़ दें। आज उस का उत्तर तुम्हारे सम्मुख है। देव लोक का जो भाग बच भी गया है वह बंजर हो गया है। देव लोग स्वयं उसे कुदृष्टि से देखने लगे हैं। उसकी सुन्दरता उन्हें अब एक आंख नहीं भाती………।

मनु—(बात काट कर) श्री महाराज को इस विप्लव का ज्ञान कैसे हुआ ?

मत्स्य—(हंसकर) चमत्कार नहीं, जादू नहीं, पृथ्वी विद्या, नक्षत्र विद्या, और अन्य इसी प्रकार की विद्याओं को सूक्ष्म दृष्टि से पढ़ने, समझने, और विचारने के पश्चात् हम जिस परिणाम पर पहुंचे उससे हमने प्रजा को सूचित कर दिया। परन्तु हमें इस बात का ज्ञान था कि बात ऐसी है जिस पर विश्वास नहीं होगा, क्योंकि कहा करते हैं कि भावी अटल है। चेतावनी देने वाले को मूर्ख ही नहीं पागल समझा गया। परन्तु आज वही पागल देख

रहा है कि जगत् पागल हुआ फिरता है। देवता लोग घर घाट छोड़कर मारे २ फिर रहे हैं, और अभी कौन जाने किस २ को उन्हीं की भांति भागना पड़ेगा ?

मनु—क्या अभी इससे बड़ी भी कोई विपत्ति आने वाली है ?

मत्स्य—जाड़ा आ रहा है, पृथ्वी की सूर्य के गिर्द परिक्रमा ऋतुओं में एक नवीन और भारी परिवर्त्तन उत्पन्न करने वाली है। जहां जिन दिनों में पहिले वसन्त ऋतु रहा करता था वहां पर भविष्य में इन्हीं दिनों में हिम वर्षा हुआ करेगी !

मनु—तो देवलोक सदैव के लिये उजड़ जायेगा ?

मत्स्य—ऐसा ही प्रतीत होता है।

मनु—अब हम किधर जा रहे हैं ?

मत्स्य—जिधर भगवान् ले जाँय। जल चढ़ रहा है। ज्ञात नहीं कब तक इस का वेग बढ़ता जाय। दिशायें जल से व्यापक हो रही हैं।

—— : ——

वरुण देवता क्रुद्ध थे। वह इस भांति फुंकारें मार रहे थे जैसे कोई भीषण नाग जोश में आ रहा हो। परन्तु मनु की नाव अपने अमूल्य बोझ को उठाये मत्स्य जी के नेतृत्व में जल में छिपी हुई चट्टानों और भयंकर भंवरों से बचती हुई चली जा रही थी। नाव वालों में से इस समय तक किसी को भी यह ज्ञात नहीं था कि मत्स्य जी नाव विद्या में प्रवीण होने के अतिरिक्त भूगोल के भी विशेषज्ञ हैं। चिरकाल तक वह इधर से उधर

और उधर से इधर भटके। कभी पूर्व, कभी दक्षिण, कभी पश्चिम की ओर मुड़े। अन्त में जल धारा दक्षिण की ओर चली तो सामने आकाश चुम्बी पर्वत की श्रेणियां दीख पड़ीं। मत्स्य जी ने ध्यान से उधर देखा, और फिर बोले :—

मत्स्य—यदि हम भूल नहीं करते तो वह उत्तरगिरि का शिखर है। निःसन्देह जल उस शिखर तक नहीं पहुंच सकेगा। इसलिये वहां स्यात शुष्क भूमि मिल जाय।

पृथ्वी का नाम सुन कर सब के हृदय में प्रसन्नता की लहर दाड़ गई। वह कब आर्य वैजो से चले थे, और कब इस स्थान पर पहुंचे, जीवन संघर्ष में इस का कोई पता नहीं था। वह इस बीच में कई वार जीवन से निराश हो चुके थे क्योंकि न हीं कोई लक्ष्य था न ही यह पता कि कहां जा रहे हैं। भोजन का सामान भी जो कुछ था समाप्त हो रहा था। वह वहुत थोड़े भोजन पर निर्वाह कर रहे थे, परन्तु फिर भी उस व्यक्ति की पूंजी की भांति जिस की आय कोई न हो, खाद्य सामग्री घटती चली जा रही थी और हर मुट्ठी दाने या फल के साथ जिसे वह मुख में डालते थे उनके हृदय वैठते जा रहे थे। चारों ओर जल ही जल था परन्तु जब से चले थे जी भर कर जल पीना हराम हो रहा था क्योंकि प्रति पल यह चिन्ता थी कि उन का अपना संग्रह समाप्त होने पर भविष्य में मीठा पानी मिल सकेगा या नहीं।

पर्वत शिखर के निकट पहुंच कर मत्स्य जी ने कहा—"इस समय वड़ी चतुराई की आवश्यकता है। जरा सी असावधानी

नाव को तोड़ फोड़ कर नष्ट भ्रष्ट कर सकती है।

यह सुनते ही कुछ नाविक नाव का रस्सा हाथ में लिये जल में कूद गये और अल्पकाल में ही उसे पत्थरों से दबा कर पर्वत शिखर से बांधने लगे। नाव को ठहरा देख कर मनु और ऋषि लोग उससे नीचे उतरे। उस स्थान का नाम तब से "मनो अवसर्पण" प्रसिद्ध है।

नाव से उतरने पर उन्होंने अनुभव किया कि इतने काल तक नाव में बैठे रहने के कारण उनके शरीर अकड़ गये हैं। जल-मृत्यु से बच निकलने पर उनके शीश परमपिता परमात्मा के चरणों में झुक गये जिसका रूप वरुण देवता के रूप में सब ओर दिखाई पड़ता था।

मनु और ऋषियों को स्थल पर उतार और उनके भोजन आदि का सामान उन्हें अर्पण करके मत्स्य जी ने कहा :—

मत्स्य—जल उतरने वाला है और अब तुम लोग उससे सुरक्षित हो। परन्तु हमारा कार्य अभी समाप्त नहीं हुआ इसलिये हम जाते हैं, ताकि यह शरीर किसी और जीव की रक्षा करने के काम आ सके इससे पहले कि प्रकृति की लीला इस खेल को समाप्त कर दे।

मनु—आप जायेंगे ? और हमें क्या आदेश है ?

मत्स्य—तुम्हारे लिये सारा संसार खुला पड़ा है, अपने आपको प्राणी मात्र की सेवा में लगा दो, सारे ब्रह्माण्ड को अपना रूप समझो, शरीर और आत्मा से जो भी उपकार होसके

करो और उसके लिये किसी से फल की आशा न रखो। परमात्मा की प्रकृति इसी नियम पर चल रही है। इसे जगत् वासियों को, जिनके साथ तुम्हारा सम्बन्ध हो, सिखाओ। यह "यज्ञ धर्म" है। इस पर चलने से जगत् में सदैव शान्ति का साम्राज्य रहेगा। इसके दृष्टि से ओझल होते ही संसार दुख और कष्ट का घर बन जायेगा। इस से अधिक हम कुछ नहीं कहेंगे। अपना बोझ स्वयं उठाना तुम्हारा काम है। ❀

मनु और सप्त ऋषियों ने सिर उठाया तो नाव बीच धार में चल रही थी और भगवान् मत्स्य नाव में खड़े उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे।

❀"मैंने इस योग को विवस्वत को सिखाया था। उसने इसे मनु को कहा और मनु ने इक्ष्वाकु को उपदेश दिया" (भगवद्गीता चतुर्थ अध्याय) "जो मानव दोष बुद्धि को छोड़ कर, श्रद्धावान हो कर सदैव मेरे इस मत के अनुसार चलते हैं वह सारे कर्मों से छूट जाते हैं" (भगवद्गीता, अध्याय तृतीय)।

सरस्वती से पार

जिस समय प्रकृति की माया जिसे पुराणों की परिभाषा में "हिरण्य गर्भ", "ब्रह्म", अथवा "महत्तत्व" की तपस्या और लीला का नाम दिया गया है, उत्तरी सागरों और देवलोकमें वह परिवर्त्तन कर रही थी जिस ने देवताओं को उस प्रदेश से बाहर निकाला, उस समय वही शक्ति दक्षिण जगत् में ऐसी घटनाएँ घट रही थीं जो मनुष्य की समझ से बाहर थीं। वहाँ पर "सप्तसिन्धु" का समुद्र जिसे पारसी धर्म की पुस्तकों ने हफ्तहिन्दू और भूगर्भ विद्या के विद्वानों ने टैथीस (Tetheys) के नाम से पुकारा है, माता अदिति की एक ही करवट से शुष्क हो गया और उसके स्थान पर हिमालय का हिमाच्छादित पर्वत ऐसे खड़ा हो गया मानो कोई श्वेत केश ऋषि महर्षि स्नान करके श्वेत वस्त्र पहन ले। वह समुद्र जो इस से पूर्व शान्त महासागर से ले कर हिमालय, काश्मीर अफगानिस्तान, बलोचिस्तान इत्यादि प्रदेशों को जल निमग्न किये, योरुप के सागरों के जलों से अपना जल मिलाये हुये था, उस महानद के रूपमें बदल गया जिसे प्राचीन विद्वानों ने सरस्वती और जियोलोजिस्ट (Geologists) लोगों ने इन्डो-ब्रह्म (Indo-Brahm) कहा है। उसके शेषजल का एक भाग सिन्धु शतद्रु, और अन्य नदियों के रूप में पश्चिम का रुख किये भारतवर्ष की सीमा बनाता हुआ दक्षिण को चल दिया। दूसरा भाग धृष्टवती, यमुना, सांपो

(ब्रह्म पुत्र), सदानीरा, अलक गंगा, आदि के रूप में उन मैदानों को उर्वरा बनाने लगा जो हिमालय के ऊपर उठने और विन्ध्या अरबुद इत्यादि के पीछे हटने, तथा समुद्र के शुष्क होने से उत्पन्न हो गये थे। यह स्थल पूर्व और पश्चिम की ओर वहती हुई इन नदियों के कारण हरे २ खेतों के रूप में परिवर्तित हो गये, जिन पर फल फूलसे लदे हुये वृक्षों की कतारें समस्त दिशाओंमें खड़ी हो गईं। इस नये उत्पन्न होने वाले महाद्वीप से परे विन्ध्या के पर्वतों को लांघ कर, मलय आदि पर्वतों से सुरक्षित, महेन्द्र पर्वत से आगे दक्षिणापथ का प्रायद्वीप था जिसे आजकल के जियोलोजिस्टों ने गोंडवाना (Gondwana) का नाम दिया है। यह एक ओर पश्चिमी अफरीका से मिल रहा था, दूसरी ओर जावा, सुमात्रा, आस्ट्रेलिया आदि को अपनी गोदी में लिये दक्षिणी अमरीका से सम्मिलित था। इन समस्त प्रदेशों में प्रकृति माता ने जी भरकर लताओं, वृक्षों, हरियाली, पुष्पों तथा पल्लवों को बखेर दिया था❋ जिन्हें देखने वाला कोई चक्षु न था सिवाये उस नेत्र के जिसे किसी नेत्र ने नहीं देखा और जो अपनी इस अद्भुत उत्पत्ति पर अपने आप ही प्रसन्न हो रहा था।

मनु जी और सप्त ऋषि मनुअवसर्पण के शिखर पर कुछ दिन विश्राम करके आगे बढ़े, तो जगत् का सबसे ऊँचा स्थल जिसे उन्हों ने त्रिविष्टप का नाम दिया, सामने कोसों तक विस्तृत पड़ा था। यहाँ पहुंच कर उनकी दृष्टि के सामने अपने प्राचीन

❋ देखो इंडियन गजेटियर (Indian Gazetteer)

देश का दृश्य आ गया। शीतल वायु सरसराती हुई बह रही थी, चहुं ओर प्रकृति की नव उत्पत्ति स्वतन्त्रता पूर्वक बढ़ रही थी, विषैले जीव जन्तु और स्यात कहीं २ उन बनो में रहने वाले वन्य मनुष्य वृक्षों की टहनियों में और उनके आस पास दीख पड़ते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रकृति की अनन्त शक्तियों ने अनन्त लक्ष्मी सब ओर बखेर दी है, इसलिये वहाँ के रहने वाले अपनी समस्त आवश्यकताओं की ओर से बेपरवाह हैं।

इस मैदान का दृश्य देखते हुए, हिम के घर हिमाद्रि के अगम्य दर्रों को पार करते हुए, वह अग्रसर हुये, तो पहिले से भी सुन्दर दृश्य सन्मुख थे, जिन्हें देख २ कर मनुष्य तो एक ओर स्यात उसका कर्त्ता भी स्वयं को भूल गया था। उन्हें देख कर पथिकों के मनों में जो विचारधारा उठती थी उसे समझने के लिये हमें उनके साथ २ चलने की आवश्यकता है। परन्तु नहीं, वह देखा सरस्वती का भारी महानद सामने आ गया। इसे पार करना स्यात हमारे लिये असम्भव हो। महानद भारी ऊंचाई से पर्वत की एक गहरी गुफा में गिर कर मीलों ऊँची झाग उछाल रहा था, जिसकी छींटें दूर तक आने जाने वालों के शरीर को भिगोती थीं। उस गुफा में गिर कर वह अति तीव्र गति से नीचे की ओर भाग रहा था। वहां से उसे पार करने का यत्न करना एक ऐसी बात थी जिसका ध्यान तक मनुष्य की शक्ति से परे है। मनु जी और सप्त ऋषि यह देख कर दुविधा में पड़ गये, वह रात नदी तट पर व्यतीत करना नहीं चाहते थे। इस कारण विश्वमित्रजी ने एक ऊँचे वृक्ष पर

चढ़ कर आस पास चहुं ओर दृष्टि दौड़ाने का यत्न करना चाहा, परन्तु वह अभी कुछ ही पग ऊपर गये थे कि नीचे साथियों के कोलाहल ने चौंका दिया। ऊपर देखा तो शरीर का चलता हुआ रक्त जम गया, क्योंकि कोई अद्भुत जीव वृक्ष से तीव्र गति से नीचे आ रहा था। उसके नेत्र जो गुफेदार बालों में ढके हुए थे तेज़ चमक रहे थे, और उनकी चमक उस तीव्र गति के साथ मिलकर जिससे वह उतरता आ रहा था पता देती थी कि उसकी नीयत भली नहीं है। कई बाण नीचे से ऊपर की ओर लक्ष्य किये हुए छूटे, विश्वमित्र जी भी शीघ्रता से पीछे मुड़े और कुछ काल पश्चात् ठोस पृथ्वी पर कूद गये। तब उन्होंने फिर दृष्टि ऊपर को उठाई तो वह अद्भुत जन्तु पत्तों में गुम होचुका था। पथिकों को तब ज्ञात हुआ कि उनके लिए वहां ठहरना कितना खतरनाक होगा।

उस समय वायु वेग से बहनी आरम्भ हो गई, श्याम मेघ भी चारों ओर से घिर आये और अल्प काल में ही दिन ने काली रात का रूप धारण कर लिया। पथिक एक दूसरे के हाथ में हाथ दिये एक चट्टान का आश्रय लेकर बैठ गये कि अन्धियारे में एक दूसरे की शक्ल दिखाई न देती थी। वह सब के सब नेत्र बन्द किये ध्यानावस्थित बैठे थे, अधरों पर वेद की ऋचायें थीं और हृदय उस परमपिता के दरबार में पहुँचे हुये थे जो अनाथों का नाथ और निराश्रयों का आश्रय है। कुछ काल बीता और फिर मेघ एक ओर से उठते हुए दिखाई दिये। थोड़े ही समय में आंधी का वेग कम होगया, तो ज्ञात हुआ कि वही आंधी काले काले मेघों को

उड़ा कर ले गई। यही नहीं उसने चहुँ ओर कई ऊँचे वृक्ष मूल से उखाड़ कर इधर उधर फेंक दिये। उन्हीं में वह गगनचुम्बी वृक्ष भी था जिस पर चढ़ने का विश्वमित्र ने यत्न किया था। वह अब एक और वृक्ष के साथ सरस्वती के आर पार गिर कर एक पुल सा बना रहा था। दैव की इस अद्भुत माया को देख कर उन्हें ज्ञात हो गया कि उस काली २ आंधी के आने के पीछे कौन सा रहस्य था।

आकाश अब निर्मल था, मानो वायु कभी तेज़ गति से चली ही नहीं। तब सब से पहिले मनु जी ने दोनों वृक्षों पर पग रखते हुए नदी को पार करने का साहस किया। उनके अन्य साथी धनुष बाण हाथों में लिये अज्ञात अदृष्ट शत्रुओं का सामना करने के लिये दूसरी ओर खड़े थे। नदी के पार उतर कर उन्होंने ओ३म् का उच्च स्वर से उच्चारण किया। यह शब्द पर्वतों में चारों ओर गूंज उठा। इसे सुनकर उनके अन्य साथी एक २ करके नदी के पार हो गये।

———

हिम वर्षा

आर्य्य वैजो के लोगों ने महर्षि अङ्गिरस को मृत्यु के घाट उतारने का इसलिये यत्न किया था कि उन्होंने यह सम्मति दी थी कि वह उस देशको छोड़कर किसी अन्य स्थान में जा बसें। उन्होंने समझा था कि यह पुरुष अपने स्वार्थ के लिए लोगों में भय और त्रास फैला कर उन्हें उस पवित्र देश से निकालना चाहता है। इसलिये उन्होंने उसे पापी मनुष्य समझकर अपने नेत्रों से दूर करने का यत्न किया था। और यद्यपि उनके महापितर यम बड़े समझदार थे, तो भी वह इस बात में उनकी नीयत पर सन्देह करने लग गये। परन्तु जब जल और स्थल के ज्वालामुखियों ने देवलोक को नष्ट भ्रष्ट करना प्रारम्भ कर दिया और इसका समाचार उनके कानों तक पहुँचा, बल्कि उनके अपने द्वीप के किनारे भी कुछ २ जल निमग्न हो गये, तो उन्हें विचार हुआ कि महर्षि अङ्गिरस स्यात सत्य ही कहते थे। इसलिये उन्होंने यह प्रबन्ध करना आरम्भ किया कि आर्य वैजो से दूर एक बाड़ा बनाया, उसमें अपने देश के शाक पात, फल आदि के बीज सुरक्षित कर लिये और जो भी पशु आदि फालतू दीख पड़े उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया।

यम आर्य वैजो में कब आये थे? यह बताने वाला आज उस द्वीप में कोई नहीं था क्योंकि वह दीर्घ काल से इस प्रदेश के आर्यों

के साथ एक हो चुके थे, और उसका सबसे बड़ा प्रमाण यह था कि यहां के लोगों ने उनकी विद्वत्ता, बुद्धि, वीरता इत्यादि को जानते हुये उन्हें अपना महा पितर या नेता चुन लिया था। और यह चुनाव उन लोगों के लिये सचमुच लाभदायक सिद्ध हुआ था, क्योंकि यम उन सर्व विद्याओं में प्रवीण थे जो देवलोक में उन्नति के शिखर पर पहुंची हुई थीं। उन्होंने आर्य वैजो के लोगों को आत्मिक विद्या का ज्ञान कराया, शस्त्रों का निर्माण व उपयोग सिखाया, कृषि विद्या में प्रवीण किया, गृह निर्माण सिखाया, समुद्र के वक्षस्थल पर क्रीड़ा करने वाली नौकाएं बनानी सिखाईं। संक्षेप में प्रत्येक प्रकार की विद्याएं सिखाईं। पारसियों की पवित्र पुस्तक 'अवस्था' बताती है कि "यम का राज्य सात द्वीपों पर फैल गया, देव और मनुष्य उसकी आज्ञा में थे। देवों से उसने धन और धान्य, पशु और पक्षी, शान और शौकत प्राप्त की। उसके राज्य में न खाद्य वस्तुओं की कमी थी, न पेय की। मनुष्यों और पशुओं में से रोग और मृत्यु का नाम निशान जाता रहा, वृक्ष और सब्जी न सूखती थी, न नष्ट होती थी। उसके देश में न बहुत ठंडी हवायें चलती थीं, न बहुत गर्म, न बुढ़ापा था न मृत्यु इत्यादि २ ···।"

सारांश, यम की आज्ञा में आर्यवैजो के लोग इस नश्वर जगत् में अमर होकर स्वर्ग का आनन्द लूट रहे थे। उनके दुखों और आपत्तियों को समझने और उनके दूर करने का काम उनके महा पितर जी ने अपने सिर पर ले रक्खा था और वह लोगों को सुखी करने के लिये प्रकृति की शक्तियों को अपने आधीन करने

के यत्न में इतने लगे रहते थे कि उनका अपना गृह जीवन देश और जाति के जीवन से पृथक् बिल्कुल न रहा था। उनके दूर के नाते की एक बहिन जिसका नाम "यमी" प्रसिद्ध था उनके साथ आर्यवैजो में आई थी, और दोनों भाई बहिनों ने अपने जीवन आर्य जाति की अवस्था को सुधारने में अर्पण कर दिये थे।

समय बीता और बीतता जाता था। यम देवलोक से अपने साथ इस विचार को लेकर आये थे कि मनुष्य के सिर पर इस जगत् में आकर जहां पर एक ऋण प्रकृति की शक्तियों अथवा देवताओं का रहता है वहां दूसरा ऋण माता पिता का है, और तीसरा विद्या दान देने वाले गुरु का। पहिले ऋण से मुक्त होने के लिये देवताओं को प्रसन्न करना आवश्यक है, जो केवल इस भांति हो सकता है कि प्रकृति की शक्तियों को बढ़ाने के उपाय किये जायें, जिसकी सब से उत्तम विधि यज्ञ मानी गई है। उन्होंने इस विधि को अपनी प्रजा❀ में भली प्रकार चला दिया था।

माता पिता के ऋण से मुक्त होने का उपाय उनकी सेवा के अतिरिक्त इस जगत् में अपना प्रतिनिधि छोड़ना है, जिस से प्रजापति की प्रजा में न्यूनता न आये। और आचार्य के ऋण को उतारने के लिये उस विद्या को जो गुरु से ग्रहण की है दूसरों को सिखाना आवश्यक है। यम पहिले और पिछले ऋण से मुक्त हो चुके थे क्योंकि उनका सम्पूर्ण जीवन यज्ञ रूप था और उन्होंने

❀ "प्रजा" सन्तान को कहते हैं। देश की सारी प्रजा अपने महापितर की सन्तान समझी जाती थी और वह उनका पिता माना जाता था।

एक नहीं, दो नहीं, लाखों शिष्य बनाये थे। परन्तु द्वियीय ऋण अभी उनके जिम्मे था। क्योंकि उन्हें अभी तक वह स्त्री नहीं प्राप्त हो सकी थी जिसे वह अपने अंग का अंग बनाकर इस ऋण से उत्तीर्ण हों। आर्य वैजो का प्रदेश सुन्दर से सुन्दर स्त्रियों से भरपूर था जिन्हें अपना साथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। परन्तु जनता की सेवा में लगे हुए होने के कारण यम उन सब को अपनी संतान समझते थे।

यमी कई दिन से उनका विचार इस विषय की ओर लाना चाहती थी, परन्तु किसी न किसी कारण से ऐसा नहीं हो सका। दोनों बहिन भाई एक दूसरे पर प्राण न्यौछावर करते थे, दोनों एक दूसरे के आन्तरिक भावों और विचारों को भली प्रकार पढ़ लेते थे, दोनों की आयु उस सीमा से पार हो रही थी जिसमें विवाह सन्तानोत्पत्ति के लिये आवश्यक है, परन्तु यम इस ओर से लापरवाह थे। पर यमी के विचार किसी और ओर चल रहे थे इस कारण वह देखिये वह कह रही है :—

*यमी—यम ! तुम युवा हो चुके, पितृ ऋण को उतारने का समय आ गया। भगवान् की आज्ञा है कि इस आयु में तुम्हें किस स्त्री को अपना बनाकर पितृवंश को नष्ट होने से बचाना चाहिए।

यम—ठीक कहा यमी! वेद की आज्ञा ऐसी ही है परन्तु……

यमी—परन्तु क्या ?

यम—मैं विवाह को केवल पितृ वंश को बढ़ाने का साधन ही

---

*देखो ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १० और अथर्व वेद १८-१-१-१६।

नहीं समझता, उससे कुछ अधिक मानता हूं।

यमी—मैं नहीं समझी।

यम—मेरा विचार है कि मनुष्य माता के उदर से अधूरा पैदा होता है, दूसरे शब्दों में यह कि उसकी आत्मा उस समय तक अधूरी रहती है जब तक उसे अपनी आत्मा का दूसरा भाग नहीं मिल जाता। मैं दो आत्माओं के इस मिलन को विवाह कहता हूं।

यमी—मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ा !

यम—विवाह काम पूर्ति का नाम नहीं, दो आत्माओं के एक होने का नाम है।

यमी--आत्मा अदृष्ट वस्तु है, इसलिये दो आत्मायें अपने २ भागों को कैसे पहचानें ?

यम—परमात्मा ने इसका साधन प्रत्येक मनुष्य के भीतर रक्खा है जिसे प्रेम का नाम दिया गया है।

यमी—(कुछ लजाते हुए) हम दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं, और स्यात इस समय इस प्रेम का उदाहरण आर्य वैजो के देश में नहीं।

यम— (चौंक कर) यमी यह क्या कह दिया ? क्या तुझे ज्ञात नहीं परमात्मा की वाणी इस बात के विरुद्ध है ? वह कहती है कि समान चिन्हों वाली वहिन विषरूपा होती है, इसलिये विवाह के अयोग्य। निःसन्देह मैं जिस प्रेम का वर्णन कर रहा हूं वह बहिन का प्रेम नहीं, उससे भिन्न वस्तु है।

यमी—(आंखें नीचे किये) हम सगे भाई बहिन नहीं, और बड़े २ महापुरुषों का कथन है कि एक पुरुष की एक पत्नी अवश्य होनी चाहिये।

यम—यह ठीक है, परन्तु मेरे पिता तुम्हारे पिता के निकट सम्बन्धियों में से थे। मेरी माता तुम्हारी माता के निकट सम्बन्धियों में से थीं। वह सनाभि थे। वेद के ज्ञाता हम लोगों में ऐसा सम्बन्ध कभी नहीं हुआ। इसलिये इस नये विचार को मेरे हृदय में न डालो। मैं मानता हूं, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, और यह भी जानता हूं कि तुम्हें मुझ से प्रेम है, परन्तु इस प्रेम को उसी धारा में बहने दो जिसमें यह आज तक बहता आया है।

यमी—(मुस्करा कर) कितने बहिन और भाई माता के गर्भ से युगल उत्पन्न होते हैं ? गर्भ में उनको पृथक् २ करने की शक्ति किसमें है ? अपने नियमों को वह सर्व-द्रष्टा जगतकर्त्ता भगवान् ही जानते हैं !

यम—तुम्हारी युक्ति देखने में बलवान है, परन्तु गर्भवास के समय क्या होता है, उसे सर्व मित्र भगवान् के अतिरिक्त और कौन जानता है ?

यमी—प्रिय यम ! क्या यह नहीं हो सकता कि मैं और तुम विवाह बन्धन में बंध कर गृहस्थ की गाड़ी को चलायें ? निश्चय स्त्री को स्वयंवर मना नहीं है।

यम—यमी ! यह जगत ईश्वरीय नियमों पर चल रहा है और ईश्वर के गुप्तचर हर स्थान में उपस्थित हैं। वह ना ही किसी की

भूल की ओर से नेत्र मंदते हैं, ना ही उसे क्षमा करते हैं। इसलिए उसके नियम को तोड़ने का विचार मत कर। निःसन्देह स्त्री को स्वयंवर की आज्ञा है और तू अपने इस अधिकार का उपयोग कर सकती है, परन्तु वह अधिकार मेरे अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के लिये होगा। उस पुरुष के मिल जाने पर परमात्मा तुम दोनों को सुख प्रदान करेंगे और हमारा भाई बहन का सम्बन्ध पवित्र बना रहेगा।

यमी की आंखें अश्रुपूर्ण हो गई और उसने दुःख भरे शब्दों में कहा—

यमी – वह भ्राता क्या जिसने वहिन की मांग को पूरा नहीं किया? और वह वहिन क्या जो भाई के होते दुखी रही?

यम—यह सर्वथा सत्य है, परन्तु भाई के लिये पाप कर्म में वहिन की सहायता करना ठीक नहीं। मैं स्वीकार करता हूं कि तेरे विचार बुरे नहीं। यह भी ठीक है कि भाई पर वहिन के अधिकार हैं, परन्तु वह अधिकार ऐसे कार्यों मेंउपयोग में नहीं लाने चाहियें जिनका परिणाम पाप हो। इसलिये तूने जो कुछ कहा उसके लिये तेरा भाई कभी और किसी रूप में तैयार नहीं हो सकता।

यमी—भाई! क्रोधित न हो, तुम्हारी वहिन तुम्हारी परीक्षा ले रही थी। हर्ष का स्थान है कि तुम उसमें उत्तीर्ण हो गये। तुम्हारा मन धर्म की ऊंची चट्टान के साथ बंधा है जिसके शिखर तक जनता नहीं पहुंच सकती। धन्य होगी वह स्त्री जिसे मेरे भ्राता के हृदय पर अधिकार जमाने का सौभाग्य प्राप्त होगा। भाई!

आर्य वैजो के स्त्री पुरुषों में सगोत्र विवाहों के सम्बन्ध में कई विचार चल रहे हैं, तुम्हारी वहिन का उद्देश्य इस वार्तालाप से तुम्हारे विचारों को जानना था।

समय और वीत गया, ध्रुव का सूर्य सन्ध्याकाल की लालिमा और श्वेत कालिमा में छिप रहा था। शीतल पवन के तेज़ झोंके उत्तर की ओर से आ रहे थे कि लोगों ने देखा कि सूर्यदेव के दृष्टि से ओझल होने के कुछ काल पश्चात् ही पवन में श्वेत २ रुई के गाले उड़ने आरम्भ हो गये। यह उस हिम वर्षा का प्रारम्भ था जिसकी भगवान् मत्स्य और उनके साथियों ने घोषणा की थी और जिसकी तहें आज ध्रुव के आसपास के प्रदेशों पर जम रही हैं।

लोग अपने २ घरों, झोंपड़ियों, और गुफाओं में छिपे बैठे थे, बढ़ते हुए शीत और उसके साथ रात का अन्धियारा उन्हें विवश कर रहा था कि वह अपने २ ऊनी कम्बलों में सिर छिपा लें और उन्होंने ऐसा ही किया। परन्तु ध्रुव की लम्बी रात्रि को एक स्थान पर बैठकर काटना असम्भव है। क्योंकि उसकी अवधि घण्टों को नहीं मासों की है। इसलिये आवश्यक है कि वहां के वासी किसी न किसी समय उठ कर नित्य कर्मों को पूर्ण करने का प्रवन्ध करते हुए जीवन की आवश्यक बातों को पूरा करने का यत्न करें। बढ़ती हुई हिम का श्वेत आलोक इस कार्य में सहायक भी था, परन्तु जब उसकी गहराई घुटनों से भी बढ़ गई तो उसमें से चलकर इधर-उधर घूमना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। महापितर यम और

उनकी बहिन यमी ने इस दृश्य को देखा तो उनकी व्याकुलता की सीमा न रही, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि सम्पूर्ण जाति कठिन शीत का सामना नहीं कर सकती, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के पास खाद्य सामग्री इतनी अधिक नहीं थी कि वह हिम प्रसारित रात्रि को सुगमतापूर्वक पार कर सकें।

और जब उन्हें ज्ञात हुआ कि हिम वर्षा अनन्त रूप धारण कर रही है तो उन्होंने जाति के पितरों से परामर्श करना आवश्यक समझा। परन्तु रात्रि के अन्धेरे और उड़ते हुये हिम के गालों में यह सुगम न था। फिर भी महापितर के निमन्त्रण पर बहुत से लोग आ गये। उस सभा में यह बात भी ज्ञात हुई कि देश के अधिकांश लोगों के पास इस अत्यधिक शीत से अपने शरीर को सुरक्षित करने के लिये वस्त्र आदि भी पर्याप्त नहीं और वह स्यात इस कड़कड़ाती हुई रात्रि को पार न कर सकेंगे। बहुत से विचार विनिमय के पश्चात् सभा इस निर्णय पर पहुंची कि यदि हिम वर्षा का अन्त शीघ्र न हुआ तो आर्य बैजो को छोड़ देने के अतिरिक्त और कोई चारा न रहेगा। परन्तु इसमें सब से बड़ी बाधा एक तो हिम वर्षा ही थी। दूसरे सम्पूर्ण जाति के लिये गृह-सामग्री को लेकर निकलना सुगम न था, क्योंकि हिम में छकड़ों का चलना असम्भव था।

उस समय यम के मस्तिष्क में यह बात आई और उसने जाति वृद्धों के सामने उसे रक्खा, कि छकड़ों आदि के पहिये उतार कर उन्हें बर्फ से धकेल दिया जाय और इस कार्य में वृषभ, भैंसे

आदि भारी पशुओं के स्थान पर कुत्ते, हिरण, बारासिंगे आदि हल्के जीवों से काम लिया जाय, क्योंकि वह हिम में अधिक गहरे न धंस सकेंगे।

इस निर्णय को कार्यान्वित किया गया, और जब थोड़े से यत्न के पश्चात् वह सफल होती दीख पड़ी, तो लोगों को अंधेरे में प्रकाश की एक रेखा दिखाई दी।

यह आजकल की स्लैज (Sledge) की आरम्भिक अवस्था थी जिसके द्वारा आर्य बैजो से वह महाप्रस्थान आरम्भ हुआ जिसका उदाहरण उस समय तक उसके अतिरिक्त अन्य कोई न था।

देव और आर्यों में युद्ध

साइबेरिया के विशाल मैदानों और वनों में, जहां आज ऊब (Ub), येंसी (Yensey) और लीना (Lena) के महानद बहते हैं, देवताओं और दस्यु लोगों में युद्ध हुआ। दस्यु वीर थे, धीर थे, और उस देश को अपने हाथों में रखने के लिये लड़ रहे थे जिसे वह परम्परा से अपना समझते आये थे। उनके शस्त्र देवता लोगों के शस्त्रों के मुकाबले में घटिया थे। उनके पास तीव्र गति वाले अश्व नहीं थे। उनका संगठन भी दृढ़ नहीं था और उनके शरीर भी उत्तरी सागर से आने वालों की अपेक्षा शक्तिमान नहीं थे। तो भी उन्होंने विदेशियों के कई बार दांत खट्टे किये और उन्हें इस बात पर विवश कर दिया कि वह अपनी भिन्न २ जातियों की शक्तियों को एक करने के लिये एकत्रित हों। इस प्रकार यह प्रारम्भिक पराजय देवताओं की बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में पिरोने का कारण बन गयी। आरम्भ में क्षीर सागर को पार करके आने वाले ये लोग गणना में भी इतने नहीं थे कि दस्यु लोगों पर कोई विशेष प्रभाव डाल सकते। परन्तु अल्प काल में जल की बढ़ती हुई बाढ़ ने उनकी गणना में बढ़ती करदी, और वह शूर वीर सेनापतियों के आधीन शत्रु को मुंह तोड़ उत्तर देने लग गये, जिसने थोड़ी २ संख्या में घर घाट को छोड़कर पूर्व और दक्षिण की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि

हवन यज्ञ की सुगन्धि स्थान २ पर साइबेरिया की नदियों के तट पर बसने वाली वस्तियों में से वायुमण्डल में उठने लगी। वेद मन्त्रों की ध्वनि उन मैदानों में गूंजने लगी।

परन्तु यह सफलता अल्प-कालीन ही थी। क्योंकि वढ़ती हुई वाढ़ और फिर शरद के आगमन ने नदियों के मुहाने के समुद्र को हिम के तोदों से पाट दिया। इससे नदियों के जल का वहाव रुक गया, और उनमें बाढ़ और भी वढ़ गई। इसलिये देव लोगों को विवश होकर उन स्थानों को छोड़ कर और आगे चलना पड़ा। साथ ही आर्यवैजो और अन्य ध्रुव प्रदेशों के शरणार्थी भी आने आरम्भ हो गये। अव देव लोग उनके अग्रभाग का काम देते हुये खड्ग से मार्ग साफ करते हुये उस समुद्र के तीर पर पहुंचे जिसका कोई चिन्ह अव एशिया के चित्रपट पर नहीं मिलता, पर जिसके अवशेष वलखश सरोवर, आराल सरोवर और कशपियन* सरोवर के रूप में अभी तक उपस्थित हैं। यह सागर कभी एक ओर कृष्ण सागर और दूसरी ओर सप्त सिन्धु के जलों में अपना जल मिला

---

*जियोलोजिस्ट (Geologist) लोग कहते हैं कि तूरान देश का एक बड़ा भाग कभी ऐसे सागर से ढका हुआ था जिसके तीन भाग अभी तक उपस्थित हैं। एक तो कैसपियन या खिजर सरोवर जो सागर से ७५ फीट गहरा है। दूसरा आराल सरोवर जिसकी सतह सागर से १५८ फीट ऊँची है। तीसरा वलखश सरोवर जो समुद्र से आठ सौ फीट ऊँचा है यह सब खारे जल के सागर हैं, और उस प्रदेश में हैं जहां वर्षा बहुत कम होती है। परन्तु उनमें गिरने वाली नदियां जो पूर्वी और दक्षिणी पर्वतों की पिघलती हुई बर्फ को लिये आती हैं सिंचाई

रहा था। परन्तु तूफान की बढ़ती हुई तेजी ने क्षीर सागर और उस अन्तरिम सागर को, जिसे देव लोगों ने महर्षि कश्यप के नाम पर कश्यपियन का नाम दिया, एक कर दिया। इसलिये यह जरूरी हो गया कि निर्वासित जैसे भी बन पड़े दूर स्थित हिन्दु कश और तीन शान के पर्वतों में आश्रय लें। उनका प्रथम शिविर सगाड़ था, जहां आज कल समरकन्द बस रहा है। पर कुछ ही काल में उन्हें ज्ञात हो गया कि यह स्थान उनके पशुओं के लिये ठीक नहीं क्योंकि चहुं ओर भिड़ें, मक्खिका और पशुओं को दुःख देने वाले जीव-जन्तु अधिक थे। इसलिये उन्हें यह स्थान छोड़ कर मात्रू (मर्व) की ओर बढ़ना पड़ा, जहां से आगे चल कर वह बाख़तर में पहुंचे।

ध्रुव के पश्चात् मध्य एशिया की उपत्यका के दिन और रात देव लोगों के लिये अचम्भा थे। वह उस देश से निकल कर आये थे जहां सूर्य देव आते थे तो जाने का नाम न लेते थे, और जाते थे तो बड़ी मिन्नत समाजत के बाद लौटते थे। परन्तु इस नये देश में दिन कुछ ही घण्टों में समाप्त हो जाता था, इसी

के लिये बहुत लाभदायक हैं। इन में से इली नदी बलखश सरोवर में गिरती है और पश्चिम की ओर सीर और आमू नदियां जिन्हें जेहूँ और सेहूँ भी कहते हैं, भारी डेल्टा बनाती हुई अराल सरोवर में जा गिरती हैं। ज़रफशां नदी जो कभी आमू की सहायक थी अब रेत में गुम हो जाती है। यही हाल दक्षिण के कई नदी नालों का है जिनमें सब से मनोरंजक मुरगाब नामी नदी है। न्यूबिगिन साहब (New begin) का दुनियां का भूगोल (Geography of the World)।

प्रकार रात्रि भी दीर्घ काल तक न रहने पाती थी। देव लोक में समस्त रात्रि को सो कर बिताना कठिन था, परन्तु यहां पर सोये ही सोये सूर्य देव की तीव्र किरणें पूर्व दिशा से चमकने लगती थीं। तो भी रात्रि को किसी न किसी समय जागना और जाग कर अपने पशु, धन धान्य, और सन्तान आदि की देख भाल करना उनका नियम बन चुका था। और इस नये देश में आकर तो ऐसा करना और भी आवश्यक हो गया था, क्योंकि दस्यु लोग अब खुल्लम खुल्ला सामने को छोड़ कर छिप कर आक्रमण, करते, इक्के दुक्के को देख कर उसे पकड़ ले जाते, और पशु, विशेषकर घोड़ों को, चुरा ले जाते। इस लिये वह देखिये अर्ध रात्रि हो चुकी है अंधियारे में हाथ पसारा दिखाई नहीं देता, परन्तु यह लोग भरत वंशियों के शिविर से पशुओं को चुरा कर हांके लिये जा रहे हैं। पशु अंधेरे में बाहर जाने के अभ्यस्त नहीं हैं, इसलिये चलना नहीं चाहते, परन्तु यह लोग उनके मुख बांधे उन्हें चलने पर विवश कर रहे हैं। कुछ दूरी पर कशापियन सागर का जल मोती की भान्ति दमक रहा है। उसी के तीर पर कुछ नाव खड़ी हैं जिन पर चढ़ाने के लिये यह लोग उन पशुओं को लेजा रहे हैं। भरत लोगों के एक ओर मत्स्य जाति के देवता हैं दूसरी ओर क्रिवी जाति के शूरवीर हैं। पुरू, अनु, द्रह्यु तुर्विशु आदि जातियों के देवता भी निकट ही हैं। कशापियन सागर के दूसरी ओर आजकल के माजिन्दरां के हरे भरे मैदानों में आर्य वैजो के आर्य लोगों की बस्ती है, जो बाखतर, हिरात, काबुल और कन्धार को

छोड़ कर आज कल के ईरान की ओर बढ़ने की तैयारियां कर रहे हैं।

इन लोगों ने दस्यु जाति से उनका देश छीन लिया है, वह उनको अपना महान् शत्रु समझती है, और हर भले और बुरे उपाय से उन्हें नष्ट भ्रष्ट करना चाहती है। उन्हें लूटना और उनका माल हड़प करना दस्यु लोगों का धर्म हो गया है। सच तो यह है कि उन लोगों में किसी भी नवयुवक को नवयुवक नहीं कहा जाता जब तक वह देव और आर्य्यों को एक भारी संख्या में कैद करके अपने मुखिया के अर्पण न करे, या उनके सिर काट कर न ले आये। आर्य्य और देव लोगों के शिरों और उनके पशुओं को हर कर लाने वालों को पुरस्कार दिये जाते और अन्य कई उपायों से उनके मन बढ़ाये जाते हैं, जिससे कि आर्यों और देव जाति का शीघ्रातिशीघ्र अन्त हो जाय।

भरत वंशियों के पशु अभी उनके शिविर से बाहर निकले ही थे कि उनका पितर अग्नि रात्रि का निरीक्षण करता हुआ उधर आया और अंधेरे के होते हुये भी उसने एक ही दृष्टि से भांप लिया कि कुशलता नहीं, क्योंकि मौन का यत्न करने पर भी चुराये हुये घोड़ों के समूह की टाप रात के सन्नाटे में साफ सुनाई दे रही थी। यह भांप कर उसने एक धीमी सी सीटी बजाई, और उसके उत्तर में कोई एक दर्जन नवयुवक, जो सिर से पांव तक अस्त्रों से सुसज्जित थे, अपने २ घोड़ों पर आरूढ़ चारों ओर से आते हुये दिखाई

दिये। उनमें से कुछ एक को नाकों पर स्थापित करके अग्नि देव ने घोड़े को एड़ लगाई और इससे पहले कि शत्रु को ज्ञात हो उसके सिर पर पहुंच कर ललकारा "जीवन चाहते हो तो पशुओं को छोड़ कर एक ओर हो जाओ।"

परन्तु दस्यु लोग अपने आप को दाल भात का नवाला जताना नहीं चाहते थे। इसलिये उत्तर देने की अपेक्षा उनके पत्थर के परशे वायु में उठकर अग्नि के घोड़े की ग्रीवा की ओर झुकते हुये दीख पड़े। परन्तु भरत वंश का नेता यह सब कुछ समझता था, और इससे पहले कि परशे अपना कार्य करें उसने घोड़े का रुख बदल दिया और बोला "भरत वंश के नाम पर मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि घोड़े मुझे सौंप दो"। उत्तर में दस्यु लोगों ने कहा "आर्य बैजो के आर्य्यों को बंदी बनाने की शक्ति किस में है ?"

यह कह कर वह अपने शस्त्र संभाल कर झपटे, और पलक मारने में भरतवंशियों के घेरे से निकलकर उस ओर को भाग गये, जिधर यम के अनुगामी आर्य लोगों की बस्ती थी।

दस्यु लोगों ने देव और आर्य लोगों को परस्पर लड़ाने की यह नयी चाल चली थी और इसमें वह किसी सीमा तक सफल भी हो गये, क्योंकि अल्पकाल में ही भरत वंशियों की सेना ने यम के अनुगामियों पर हल्ला बोल दिया। उन्हें गिला था कि मित्र हो कर उनसे शत्रुता की गई है। रात्रि अंधकारमय थी, इससे आर्य लोग यह न समझ सके कि आक्रमण करने वाला कौन है। अंधियारे में घमसान का रण पड़ा, चारों ओर रक्त की नदियां

बह गई, और दिन निकलते २ दोनों ओर भारी हानि हो गई। सूर्य निकला तो रात के रक्तपात ने सब ओर विध्वंस कर दिया था। दोनों ओर के मित्र और सहायक एक दूसरे की सहायता के लिये बढ़े आते थे। दस्यु लोग देव आर्य्यों की फूट पर बगलें बजा रहे थे।

यह रक्तपात कई दिन तक चलता रहा, और तभी उसका अन्त हुआ जब एक ओर मैदान बिल्कुल खाली हो गया। आर्य वैजो के प्रवासी रात के अन्धेरे का लाभ उठा कर माजिन्दरां के मैदानको छोड़कर अलबुर्ज पर्वत से दूसरी ओर फारस के मैदानों में चले गये। माजिन्दरां देवों के हाथ में आ गया। दीर्घ काल तक ईरानी लोग माजिन्दरां के देवों के भय से भयभीत रहे। फिरदौसी

आरमीनियस वैम्बीरी (Arminius Vambery) साहिब अपनी पुस्तक "ट्रैवल्स इन सैंट्रल एशिया" (Travels in Central Asia) के पृष्ठ ३१० पर लिखते हैं।

"पाठक प्रश्न करेंगे कि यह प्रसिद्ध डाकू (तुर्कमान लोग) जिन की प्रकृति में पाशविकता की कोई सीमा नहीं, परस्पर एक दूसरे को खाये बिना कैसे जीवन व्यतीत करते हैं। बात निश्चय ही आश्चर्यजनक है, परन्तु यह सत्य है कि यद्यपि उनके अन्दर पाशविकता इतनी अधिक है फिर भी जब तक शत्रुता की खुल्लम खुल्ला घोषणा न हो उन लोगों के भीतर डकैती, अन्याय, व्यभिचार और हत्या की घटनाएं एशिया की उन अन्य जातियों की अपेक्षा जिनके सामाजिक सम्बन्ध इस्लामी-सभ्यता पर हैं, कम होती हैं। बनों के इन

तूसी का शाह नामा और देव सफैद और देव सियाह के कारनामें उसका प्रमाण हैं। "अवस्था" के पन्ने उससे भरे पड़े हैं। तुर्कमानी भाषा का शब्द "देव" इस पर मोहर लगाता है।

रहने वालों पर एक ऐसा शक्तिशाली सम्राट शासन करता है जिस का शासन बर्बरता की सीमा तक पहुंचा हुआ है। उसे इन लोगों ने स्वयं कभी नहीं देखा, परन्तु उस के अस्तित्व को सब कोई स्पष्ट अनुभव करते हैं। यह "देव" है जिसे आजकल 'रीति रिवाज' के अर्थ में उपयोग किया जाता है।

नाग पूजा

अमावस्या की काली रात आधी बीत चुकी थी, घोर अन्धकार था और उस पर काले २ बादल। उस समय मूजवत ❀ पर्वत के नीचे स्थित घाटियों में कोई मनुष्य बढ़ा चला जा रहा था। वह कौन था ? यह पता न चलता था। रात के घटाटोप अन्धकार में हाथ को हाथ दृष्टिगोचर न होता था। ऐसी अवस्था में उस अज्ञात पथिक को कौन जान सकता था ? जब कड़कड़ाती हुई विद्युत ने चारों ओर क्षण भर के लिये उजाला फैला दिया तो ज्ञात हुआ कि उसका मुंह सिर वस्त्र से ढका हुआ है।

घाटी के एक कोने में आंधी का चिराग जल रहा है जिस का आलोक कभी दृष्टि के सामने आता है कभी ओझल हो जाता है। विचार है कि जाने वाले का लक्ष्य वही स्थान है, जहां यह दीपक जल रहा है। विद्युत फिर चमकी तो ज्ञात हुआ कि पथिक के पीछे २ कोई और व्यक्ति भी चला जा रहा है। अंधेरे में उसकी पहचान भी असम्भव थी, परन्तु ऐसा ज्ञात होता था कि जहां पहले मनुष्य का लक्ष्य दीपक वाला स्थान है, दूसरे का

❀ ब्राह्मण ग्रंथों में इस पर्वत पर रहने वाली जातियों का वर्णन वाल्हीक लोगों के साथ आता है। यहाँ पर उत्पन्न होने वाली सोमलता विशेष विख्यात थी, इसलिये सोम यज्ञोंमें आदर की दृष्टिसे देखी जाती थी।

उसका अग्रगामी, क्योंकि वह बहुत दबे पांव जा रहा था और जहां भी यह सन्देह होता कि पथिक उसके पांव की चाप सुन रहा है तो वह मार्ग छोड़ कर एक ओर दुबक जाता।

रात्रि के इस भीषण अन्धकार में मेघों की गर्जना ही निस्तब्धता को तोड़कर जाने वालों के पांव की चाप को दूर पहुंचने से रोक रही थी।

एक स्थान पर पहुंच कर पथिक रुका और सावधान होकर कुछ सुनने लगा। फिर कुछ क्षण के उपरान्त स्वयं ही गुनगुनाया, "पूजा का समय हो गया, विलम्ब हुआ जाता है" यह कह कर उसने अपनी गति तीव्र कर दी। अब उसे अधिक सतर्कता की भी आवश्यकता न रही थी।

कुछ देर तक वह उस अंधियारे को काटता हुआ भागता रहा। फिर दीपक के प्रकाश में उसका आकार लम्बा होता ज्ञात हुआ। तब उसने अपने सिर की चादर उतार कर चेहरे से पसीने को पोंछा। कुछ समय और बीता और उसने दीपक के निकट पहुंच और शीश निवा कर दण्डवत् की। हमने फिर कर देखा तो उसके पीछे आने वाले का कहीं पता न था। स्यात वह अंधेरे में कहीं ठोकर खा गया या पीछे लौट गया।

दीपक के प्रकाश के सम्मुख अब एक और मूर्ति घूमती हुई दिखाई दी और आगन्तुक के कानों ने सुना "कहो नागानन्द! क्या सूचना लाये?"

नागानन्द—(पुनः दण्डवत् करते हुए) महाराज की कृपा से

सब कुछ देख आया हूं। शत्रु की शक्ति का पूर्ण परिचय प्राप्त कर आया हूं।

महाराज—हूं!

नागानन्द—शत्रु अपने बाल बच्चों के साथ बहुत दूर तक फैला हुआ है। उसकी शक्ति अनेक जातियों की शक्ति का सम्मिलन है, जिनमें से बड़ी २ भरत, पुरु, क्रिवी, सरिंजे, अनु, द्रह्यु, यदु, तुर्वपु, मत्स्य, उपिनर इत्यादि हैं। यह जातियां अपने २ नेता की आज्ञानुसार कार्य करती हैं जिसे "पितर" कहा जाता है। वह एक ही वंश के वंशजों से सम्बन्ध रखते हैं। इन पितरों के ऊपर एक "महा पितर" रहता है जो विशेप समयों पर उनका नेतृत्व करता है। उनके वर्ण गौर, आकार लम्बे, और बाल भूरे होते हैं। जल-विप्लव ने उन्हें अपने देश से निकलने पर विवश कर दिया और अब वह अपने लिये नये स्थान ढूँढ रहे हैं।

हम लोगों ने पिछले दिनों उनमें फूट डलवाने का यत्न किया था और उसमें हमें आशातीत सफलता हुई। उसका परिणाम यह है कि उनका एक भारी भाग कट कर दूसरे देशों की ओर जा रहा है।

महाराज—यह सुख समाचार है। निश्चय वे लोग निरे बुद्धू हैं।

नागानन्द—हम रात्रि के समय उनके पशु चुरा कर लिये जाते थे। उनके पितर ने हमें ताड़ लिया, तो हमने उसपर यह प्रगट करने का यत्न किया कि हम आर्य बैजो के आर्य हैं। परि-

णाम यह हुआ कि भरत लोग आर्य वैजो वालों पर टूट पड़े। मुकाबले में वह भी डट गये और सैकड़ों का रक्त धरती माता की प्यास को बुझाने का कारण बना।

महाराज—धरती माता बहुत प्यासी है वह अभी लाखों का रक्त पियेगी।

नागानन्द—क्या पूजा प्रारम्भ हो गई ?

महाराज—पूजा हो रही है, परन्तु अभी देवता प्रकट नहीं हुये। आज हम उनसे स्पष्ट पूछेंगे कि इस नई आपत्ति को जो हमारी जाति पर आ रही है कैसे निवारण किया जाय ?

नागानन्द—देवता इस प्रश्न का उत्तर देंगे ?

महाराज—आशा करनी चाहिये।

पूजा हो रही थी। चारों ओर से घिरी हुई गुफा में पुजारी, जिसे हम 'महाराज" के नाम से कथन करते आये हैं, नृत्य कर रहा था, वीणा की ध्वनि चहुं ओर मस्ती का साम्राज्य फैला रही थी, उसकी ताल के साथ पुजारी के चरण उठ रहे थे। दर्शक भी उस ध्वनि को सुनकर मन्त्रमुग्ध हो रहे थे, उनके सिर झूम रहे थे, और कभी २ देवता की जयकार भी मुंह से निकल जाती थी।

वीणा का स्वर जो पहिले धीमा था उच्च हो गया, और पुजारी के पदों के नूपुर भी तीव्र गति से बजने लगे। उसका रंग काला था, जिसकी कालिमा को तैल की मालिश ने और भी अधिक काला बना दिया था। चेहरा चौड़ा, नाक चपटा, आंखें छोटी और

गोल, वाल तांबे के रंग के थे, और रात्रि के अन्धकार में उसके रूप को और भी भयंकर वना रहे थे।

वीणा के स्वर के साथ हल्के से राग की आवाज सम्मिलित हो गई। साथ ही गुफा के बीच में से एक भारी अजगर निकलता हुआ दिखाई दिया जो वेदी के निकट आकर चारों ओर देखने लगा।

सब ओर आतंक का राज्य था। उपस्थित गण अजगर की दृष्टि से दृष्टि मिलाने के स्थान पर मुंह के बल लेट गये। पुजारी बड़े जोर से नाचता हुआ कहने लगा "देव! हमारी जाति आपत्ति में फंसी है। उसका घरवार छीना जा रहा है। उसे छीनने वाले डाकू आपकी शक्ति को नहीं मानते। उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करके अपने भक्तों को आश्रय दीजिये, आश्रय दीजिये!!"

अजगर का शीश पहिले से अधिक ऊंचा हो गया। अव वह विल्कुल सीधा खड़ा था और उसकी दृष्टि चारों ओर देखती हुई ज्ञात होती थी। उसकी लम्बी जिह्वाएं जोर से लपलपा रही थीं।

मन्दिर में इतनी निस्तब्धता थी कि सुई भी गिरे तो सुनाई दे जाय।

पुजारी ने नृत्य करते हुये अपना सिर नाग के फन से लगा दिया, उसकी जिह्वा से जिह्वा मिलाई, और फिर तड़प कर अलग हो गया। अजगर ने चारों ओर देखा और शनैः २ अपने विल की ओर लौट गया।

पुजारी का नाच बन्द हो गया। उसने चारों ओर देख कर गर्जता हुई वाणी से कहा "देवता क्रुद्ध हैं! उन्होंने हमारे चढ़ावे को स्वीकार नहीं किया!! हमारी जाति के सिर पर तबाही और बर्बादी के बादल छा रहे हैं!!! काली जातियां तबाह और बर्बाद हो जायेंगी! उनके दुर्ग और शहर खाक में मिल जायेंगे! उनके स्थान पर श्वेत जातियों का झण्डा लहरायेगा। देवताओं की नाराज़गी का कारण किसी देश-द्रोही की ग़द्दारी है। कोई शत्रु इस समय इस गुफा के भीतर छिप कर देवता को नाराज़ करने का कारण हुआ है। उसे तबाह कर दो। बर्बाद कर दो! टुकड़े २ कर दो!!"

अन्तिम शब्दों के साथ पुजारी की आवाज अत्यधिक उच्चता को पहुंच गई, और उसका प्रभाव यह हुआ कि इससे पहले कि उसकी गूंज गुफा के वातावरण से लुप्त हो नाग देवता के पुजारी लोगों ने गुफा का फाटक बन्द करके उसके कोने २ को ढूंढना आरम्भ कर दिया। परन्तु पूरा यत्न करने पर भी वह किसी बाह्य मनुष्य पर हाथ न डाल सके। उस समय नागानन्द की आवाज़ एक ओर से यह कहती सुनाई दी :—

नागानन्द—भविष्यवाणी हो चुकी! परन्तु हमें उसे सुन कर निराश नहीं होना चाहिए। देवता हमसे अप्रसन्न हैं पर हम उन्हें प्रसन्न करके रहेंगे और इस कार्य में अपने शरीर और प्राणों की बाजी लगा देंगे।

पुजारी—कौन? कौन बोल रहा है? नागानन्द? हां! देवता प्रसन्न हो सकते हैं, परन्तु उनकी प्रसन्नता बलिदान मांगती

है। मनुष्य का बलिदान मांगती है। तुममें से कौन देवता को प्रसन्न करने के लिये अपना बलिदान देना चाहता है?

नागानन्द—नागानन्द का सिर हाज़िर है।

"और नागदत्तभी पीछे नहीं रहेगा" दूसरी ओर से आवाज़ आई।

"सारे के सारे "निशाजन❀ इस सेवा के लिये अपने आपको बलिदान कर देंगे" तीसरी ओर से एक स्त्री की रोबदार आवाज़ ने कहा।

❀ निशा के कबीले के स्त्री-पुरुष। प्राचीन द्रविड़ लोगों में कबीले की सरदार उसकी मां होती थी और उसी के नाम पर कबीले का नाम भी होता था। बाद के समय में आर्यों में भी कहीं २ यह रिवाज हो गया था। प्रोफेसर नृपेन्द्र कुमार दत्त एम० ए० अपनी पुस्तक 'दि आर्यानाइज़ेशन आफ इन्डिया' (The Aryanization of India) के पृष्ठ ७६ पर लिखते हैं "ऋगवेद के समय के ऋषियों और राजाओं में मां के नाम पर नाम बहुधा नहीं मिलते, यद्यपि पिता के नाम पर ऐसे नाम अधिकांश हैं। उदाहरण, पुरुकुत्स, गेरीक्षत, कक्षीवंत, ओसेज-पेजुवन। परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में मां के नाम पर नाम के साधारण उपयोग के साथ ही (जैसे "सत्यकाम जाबाल" "महिदास एत्रे" "परस्नी पुत्र असुरी वस्न" "संजीवी पुत्र" "कृष्ण देवकी पुत्र") पिता के नाम पर (जैसे "धृतराष्ट्र वैचित्र वीर्य") बताते हैं कि गंगा की वादी में स्थित आर्य लोगों पर मातृ प्रधान ढंग का प्रभाव बढ़ रहा था।

पुजारी—तुममें से एक २ को यह सौगन्ध खानी होगी कि वह जाति की रक्षा के लिये शत्रुओं को नष्ट करने में सदैव उद्यत रहेगा।

"हम सौगन्ध खाते हैं" एक स्वर होकर सबने कहा।

"जाओ समय पड़ने पर तुमसे वह काम लिया जायेगा जिसके लिये तुमने सौगन्ध खाई है। परन्तु स्मरण रक्खो आज की कार्यवाही का पता अपनी जाति से बाहर किसी को नहीं लगना चाहिए। नहीं तो देवता का क्रोध मुझे, तुम्हें, और सारी की सारी जाति को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा।"

———

रक्त रंजित रात्रि

"चिरकाल से एक वात मन में है जिसे मुँह से कथन करने का साहस नहीं होता"। श्रद्धा से सम्बोधन करके मित्र ने कहा।

उस समय वह और श्रद्धा बस्ती से बहुत दूर निकल आये थे। पामीर की उपत्यका के आस-पास देव लोगों की वस्तियाँ बसी थीं, और उनसे परे हिन्दुकुश और क्युनलिन के पर्वतों के शिखर बर्फ़ से ढके हुए दीख पड़ते थे। श्रद्धा, मित्र, वरुण और अग्नि के सिर पर देव लोगों के शिविर के निरीक्षण और रक्षा का बोझ था, और वह अत्यन्त सावधानी से उसे उठाये हुये थे। उसी सिलसिले में वह इधर निकल आये थे, क्योंकि उन्हें यह समाचार मिल चुका था कि नाग के पुजारी दस्यु शीघ्र वा देर से उनकी वस्तियों पर छापा मारने का फैसला कर चुके हैं। और वह आस पास के बारे में सब सूचना स्वयं एकत्र करना चाहते थे। उस समय पर्वत का एक ऊँचा टुकड़ा दोनों के सिर पर छाया किये हुए था। सामने दूरी पर सागर का जल मोतियों की भांति चमक रहा था। श्रद्धा की दृष्टि उसकी ओर लग रही थी, और न जाने उसके मन में क्या २ विचार उठ रहे थे जब मित्र के शब्द सुन कर उसने कहा—"कौनसी ऐसी बात है जिसे कहते हुये आप झिझक रहे हैं?"

मित्र—डर है कि आप उसे सुन कर क्रुद्ध हो जायगीं।

श्रद्धा खिलखिला कर हँसी, परन्तु हँसी के साथ ही उसके हृदय की गति भी तीव्र हो गई, क्योंकि स्त्री की स्वाभाविक बुद्धि ने उसे बता दिया कि कौन से शब्द उसके कर्णगोचर होने वाले हैं। हँसते हुये उसके मुख से निकला "क्या श्रद्धा मित्र पर क्रोध कर सकती है ?"

उसके शब्दों और हँसी ने मित्र का उत्साह बढ़ा दिया और उसने घबराये हुये कहा :—

मित्र—श्रद्धा ! तुम्हें ज्ञात है मेरे हृदय में तुम्हारे लिये कौन से भाव हैं ? तुम स्यात विश्वास नहीं करोगी कि मैंने कितने मास और शायद कितने वर्ष तुम्हारी मूर्ति की पूजा की है। पर अब मैं अपने विचारों को अधिक समय तक छिपा नहीं सकता। श्रद्धा ! क्या तुम मित्र को अपना हाथ सौंप कर उसका सिर ऊँचा कर सकती हो ?

श्रद्धा का हँसता हुआ मुख गम्भीर हो गया, और अल्प काल के मौन के पश्चात्, जो मित्र के लिये एक युग से कम न था, उसने कहा :—

श्रद्धा—मित्र ! तुम ने जो कुछ कहा उससे तुम ने श्रद्धा के सिर को बहुत ऊँचा कर दिया..............

मित्र (बात काट कर)—तो क्या श्रद्धा मुझे स्वीकार करने को उद्यत है ?

श्रद्धा—(हाथ के संकेत से बोलने से मना कर के) मैं कह रही

थी कि आप का कथन मेरे सिर को गौरव से ऊँचा कर रहा है परन्तु.........................

मित्र— क्या ?

श्रद्धा—परन्तु श्रद्धा से आप जो कुछ चाहते हैं वह उसके पास नहीं।

मित्र—(विस्मित हो कर) मैं नहीं समझा।

श्रद्धा— श्रद्धा अपना हाथ बहुत काल से किसी दूसरे को सौंप चुकी है!

मित्र का चेहरा उतर गया, और बड़ी कठिनता से उसके मुँह से निकला :—

मित्र—मेरे लिये यह नया समाचार है।

श्रद्धा—शोक है कि मैं अपनी बेसमझी से मित्रों को गंवा रही हूँ। इससे पहिले वरुण जी ने भी ऐसा ही कुछ कहा था और अब मुझे आपके कथन को भी अस्वीकार करना पड़ा है।

मित्र—क्या मैं पूछ सकता हूं कि वह कौन भाग्यवान है जिसे श्रद्धा का कर समर्पण हो चुका है।

श्रद्धा—जिसके यज्ञ ने श्रद्धा को उत्पन्न किया, उसी के आधे अंगों को पूर्ण करने के लिये श्रद्धा इस जगत् में आई है।

मित्र—मैं नहीं समझ सका।

श्रद्धा—श्रद्धा सर्वदा मन के भीतर रहती है। मन के बिना श्रद्धा का स्थान और कहीं नहीं।

मित्र—आप पहेलियों में बातें कर रही हैं।

श्रद्धा—शायद ऐसा ही है, परन्तु मैं जो कुछ कह रही हूं वह स्पष्ट है। श्रद्धा मनु जी के यज्ञ से उत्पन्न हुई और वही उसका पाणिग्रहण कर के उसे आश्रय देने वाले हैं।

मित्र—(विस्मित हो कर) मनु! पर वह कहां हैं?

श्रद्धा—वह कहीं भी हों श्रद्धा उनकी है और वह श्रद्धा के हैं। मित्र! हम तुम बहुत समय से एक दूसरे को जानते हैं, इसलिये तुम्हें यह बताने की आवश्यकता नहीं कि देव-स्त्री जीवन में एक ही पुरुष के हाथ में हाथ देती है, और दे सकती है, जिस के पश्चात् वह उस पुरुष के आत्मा का भाग बन जाती है। इसलिये वह कहीं भी हों, जीवित अथवा मृत एक समान हैं।

श्रद्धा अपने आप में खोई सी जा रही थी, परन्तु एक दम उसकी दृष्टि सामने वाली झाड़ी पर पड़ी और उसके मुखसे निकला, "वहां कौन है?"

वार्त्तालाप का सिलसिला टूट गया। और वह दोनों शीघ्रता से उठ कर उस झाड़ी की ओर चल दिये, जिस में से एक भारी अजगर घिर आते हुये अन्धकार में तीव्र गति से भागा जा रहा था।

—:—

संध्या का श्याम वर्ण रात्रि के अन्धकार में परिवर्त्तित हो गया। देव लोग जलती हुई अग्नियों को ढांपकर मीठी निद्रा में सो गये। और उनमें से कुछ के खर्राटे दूर २ तक सुनाई देने लगे। उस समय उनकी झोंपड़ियों के आस पास से सकड़ों नाग रींगते हुये

झोंपड़ियों में घुसते हुये दृष्टिगोचर हुये। फिर कुछ काल में वह नाग द्विपद हो कर मनुष्य दिखाई देने लगे। कुछ क्षण और व्यतीत हुये और एक धीमे से संकेत पर उनके हाथ काम करने लगे, और देव लोगों में से सैंकड़ों के शिर धड़ से अलग हो गये!

परन्तु उनमें से कुछ ऐसे भी थे जिन के घाव गहरे न थे, यह शायद इसलिये कि सारे ही आक्रमणकारी एक से शक्तिमान न थे। घायल हो कर यह लोग उठे और आक्रमणकारियों से गुत्थम गुत्था हो गये।

चारों ओर कोलाहल मच गया। सब ओर चमकती हुई तलवारें विद्युत समान कौंदने लगीं। "धोखा! फरेब! खबरदार! कोई बच कर न जाय"। श्रद्धा का तेजोमय स्वर यह कहता सुनाई दिया, और उसके साथ ही देव लोग, जो पहिले एकाएक आक्रमण से घबरा गये थे, सतर्क हो कर शत्रु का सामना करने लगे। उस समय उन की स्त्रियाँ और बालक भी शस्त्र संभाल रहे थे।

शत्रु ने अन्धकार का लाभ उठाकर उन्हें बहुत हानि पहुंचाई। परन्तु यज्ञ अग्नियों पर समिधा डाल दी गई, और उन्होंने थोड़े ही समय में चारों ओर उजाला फैला कर बता दिया कि दस्यु लोग शिरों पर नाग के फण की शक्ल के टोप और शरीर पर काले वस्त्र धारण करके अन्धेरे में आक्रमण के लिये आये थे। उजाला फैलता देखकर दस्यु लोग पीछे हटे। उन्हें अपने उद्देश्य में पर्याप्त सफलता हो चुकी थी। चारों ओर रक्त की नदियां बह रही थीं, इसलिये अब उन्होंने पीछे हटने में ही कुशलता समझी, परन्तु

देव लोगों के वृद्धों ने सब ओर के नाकों को रोक रक्खा था जिससे कि दस्यु भाग न सकें।

घमसान का युद्ध हुआ। चारों ओर मारकाट होने लगी। तीरों की सरसराहट का शब्द सब ओर सुनाई देने लगा। गदाओं की खटाखट ने लोहार की एहरन का दृश्य बांध दिया।

घण्टों यही दशा रही, फिर युद्ध का वेग मध्यम हो गया क्योंकि आक्रमणकारी बहुधा समाप्त हो चुके थे।

दिन निकला तो हर घर में शोक था। ऐसी कोई भी झोंपड़ी न थी, जिसमें से कोई व्यक्ति उस रक्त रात्रि की भेंट न हुआ हो। शत्रु की चालें बहुत गहरी और सफल थीं, और यदि वह इसी भान्ति सफल होती रहीं, तो कुछ ही दिनों में देव जाति का कोई भी व्यक्ति पृथ्वी तल पर न रहेगा। दस्यु अपने सरदारों की आज्ञा में पूर्ण रूप से संगठित थे। उनके दुर्ग पर्वतीय प्रदेशों के नाकों पर स्थित थे। वह उन सब स्थानों के मार्गों पर अधिकार रखते थे, और यदि देव लोगों ने अपनी स्वाभाविक दया को छोड़कर उनके मनोरथों को न तोड़ा, तो वह पूर्णतया नष्ट भ्रष्ट हो जायेंगे। उनके बीच नये नेता उत्पन्न हो रहे थे जो देवलोक की स्वाभाविक दया भाव के विरुद्ध थे। दस्यु लोगों के अत्याचारों ने इन नेताओं के हाथ दृढ़ कर दिये थे। इन नये नेताओं का मुखिया इन्द्र था।

दस्यु और पणि

"सरमा ! सरमा ! इधर आओ" इन्द्र की गरजती हुई आवाज़ बुलंद हुई। प्रत्युत्तर में एक भयावने कुत्ते के भौंकने की आवाज़ आई, जो एक छलांग मार कर दुम हिलाता हुआ अपने स्वामी के चरणों को चाटने लगा।

इन्द्र उस समय उसके साथ प्रेम करने को तय्यार नहीं था। उसके नेत्रों से रक्त बरस रहा था, और सरमा को चरणों से हटाते हुए उसने कहा:—

इन्द्र— सरमा ! हम लोगों पर आपत्ति आगई है और तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। समय काम करने का है, मेरे हाथ पांव को चाटने का नहीं।

सरमा स्वामी के चरणों से अलग होकर उसके मुख की ओर निहारने लगा। मानो स्वामी की बात को समझने का प्रयत्न कर रहा है।

इन्द्र—रात्रि को तुम निश्चिन्त होकर सो गये थे, इसलिए हमारी इतनी हानि हो गई !! और तुम्हें इसका प्रायश्चित्त करना होगा। तुम बस्ती में फिर कर आये हो, हमारी गौएं कहां हैं? हमारे अश्व कहां हैं? हमारे वृषभ कहां हैं? तुमने उनकी रक्षा नहीं की और शत्रु अंधियारे में उन्हें हर ले गया। अब तुम्हें उनका खोज निकालना होगा। तुम अपने पशुओं के चरण-चिन्ह पहचानते हो,

उनकी गंध को जानते हो, उनकी पूरी खोज करो। चाहे इस कार्य्य में प्राण भी विसर्जन करने पड़ें।

सरमा ने शीश नवा दिया, और थोड़े समय में ही उसके भौंकने की आवाज़ सुनाई दी। प्रत्युत्तर में सैकड़ों भौं २ की आवाज़ें आईं और कुत्तों की सेना चारों ओर बिखर गई।

"देवताओ! रात्रि को जो कुछ हुआ, उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं। इस समय हम लोगों में से कौन है जो इसे नहीं जानता? और जिस पर इसका प्रभाव नहीं पड़ा? परन्तु मुझे अब आपको एक और नया समाचार सुनाना है, जो रात्रि वाले मामले से भी अधिक भयानक है। आपको ज्ञात है कि हम लोग जल कहां से प्राप्त करते हैं? अब शत्रु ने हमें प्यासे मारने की ठान कर उन झरनों के जल को पर्वत शिखर पर ही रोक दिया है। हमारी गौएं, हमारे वृषभ और हमारे अश्व, पणि लोग ले गये। हमारे सैनिकों को, हमारी स्त्रियों को, और हमारे बच्चों को, दस्यु लोगों ने अंधियारे में वध करने का यत्न किया, और रहे सहों को जल से वंचित करके वह अब हमें इस जगत् से उठा देने पर तुल गये हैं। इसलिए आपको अपने प्राणों की रक्षा के लिए यत्न करना होगा, और अति शीघ्र करना होगा, सूर्य देव के अस्ताचल को जाने से पहले २ करना होगा।" इन्द्र ने देव लोगों के सामने भाषण

देते हुए कहा। यह सुनकर चारों ओर निस्तब्धता छा गई। फिर थोड़ी देर के पश्चात् अग्नि ने कहा :—

अग्नि—क्षमा देवताओं का आभूषण रहा है, परन्तु अब समय आ गया है कि हम उसे एक ओर रखकर अपने प्राण बचाने के लिए कटिबद्ध हो जायें। नहीं नहीं, यदि हमें जीवित रहना है, तो हमें इसी क्षण शस्त्र संभाल कर, प्राणों को हथेली पर रख कर, शत्रु का सामना करना होगा। एड़ियां रगड़ रगड़ कर मरने के स्थान में हमें वीर पुरुषों की भांति प्राण देना अधिक शोभा देगा।

मरुत—अग्निदेव ने जो कहा, हम उससे सहमत हैं। हमें पणि और दस्यु लोगों के आगे माथे रगड़ने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने हमारे कितने ऋषि और महर्षियों का निरादर किया है? उसे हम भली प्रकार जानते हैं। हमारे पशुओं को चुरा कर, और हमारे मनुष्यों, स्त्रियों और बच्चों को मार कर उन्होंने अपने पाषाण हृदय होने का सबूत दे दिया है, और अब हमें प्यासे मारने का उपाय करके उन्होंने अपने आपको आततायी बना दिया है। ऐसे लोग अग्नि से जलाये जाने योग्य हैं, शस्त्रों से काटे जाने योग्य हैं। वाणों से बींधे जाने योग्य हैं। हमें उनके पापों का फल देने में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार के भाषण हो रहे थे, सभा में जोश फैल रहा था, शूरवीरों के हथियार हाथों से निकले जा रहे थे, कि कुत्तों के

---

*पणि एक जाति का नाम है जो वणिज व्यापार और पशु पालन में विख्यात थी। पीछे यह शब्द वणिया नाम में परिवर्तित हो गया।

भौंकने का शब्द आया। उसे सुनकर इन्द्र ने कहा—"सरमा लौट रहा है, वह बहुत उतावली में है, आप तैयार हो जाएं।"

अभी यह शब्द उसके मुख में ही थे, कि बड़ी २ छलांगें मारता हुआ सरमा इन्द्र के कपड़े को पकड़ कर एक ओर चलने के लिए आग्रह करने लगा। उस समय इन्द्र ने अपने साथियों की ओर देखकर कहा :—

इन्द्र—सरमा हमें अति शीघ्र वहां लेजाना चाहता है, जहां हमारे पशु हैं। आप लोग शस्त्र संभाल कर सावधानी से चुपचाप चले आयें। देखें इसका अन्वेषण क्या कहता है?

सरमा आगे २ था और देवसेना का एक भाग पीछे २। कुछ समय तक सब चुपचाप चलते रहे। सरमा पर्वत मार्गों से कभी एक ओर भागता, कभी दूसरी ओर भागता, फिर शीघ्र ही सामने मार्ग दर्शाता हुआ चल पड़ता। मार्ग एक घने जंगल में से पेच खाता हुआ जा रहा था। जंगल में जंगली जानवरों के शब्द कभी-कभी सुन पड़ते थे। मनुष्यों के होने का वहां कोई चिन्ह नहीं था। हां ऊँचे वृक्षों पर काले और पीले वनमानुष अवश्य कुदक रहे थे।

कुछ समय तक चलने के पश्चात् एक स्थान पर सरमा दबक कर बैठ गया। उसे बैठे देखकर उसके अनुगामी शूरवीर भी मौन साधकर बैठ गये। कुछ क्षण के बाद सरमा गुर्राता हुआ उठा और एक छलांग के साथ एक गुफा के मुहाने पर पहुंच कर उसने एक मनुष्य के गले में दांत चुभो दिए। यह सब कुछ एक क्षण में होगया। उधर दृष्टि पड़ते ही इन्द्र के धनुष से कई बाण निकल

कर सरमा के शिकार की पीठ से होते हुए पार हो गये ।

गुफा के आस पास से कुछ और मनुष्य कुत्ते पर झपटे, परन्तु देवसेना के तीरों ने उन्हें धराशायी कर दिया ।

मैदान खाली देख कर सरमा आगे बढ़ा, और गुफा के मुंह को कुरेदने लगा । इन्द्र ने अपने साथियों को संकेत किया, और उनमें से कुछ एक दूसरे के कंधों पर खड़े होकर अन्दर झांकने लगे । अन्दर से किसी के श्वास लेने का शब्द आ रहा था । परन्तु अंधकार इतना अधिक था कि यह न प्रतीत हो सका कि गौएं हैं या कोई और जानवर । फिर गुफा का मुंह ढूंडा गया । यहां भी कुत्ते की सहायता काम आई । वह शीघ्र ही उधर पहुंच गया, जहां एक भारी शिला गुफा के मुख पर रखी थी । सब ने मिलकर बल लगाया, तो शिला थोड़ी सी हिल गई, इस पर फिर यत्न किया गया और अन्त में वह एक ओर हटा दी गई । शिला के हटने के साथ ही गुफा के अन्दर इकट्ठे हुए पशु डर गये, किन्तु उजाला होते ही बाहर निकलने का यत्न करने लगे । तब मालूम हुआ कि वे वही पशु हैं जो रात को चुराये गये थे । अब इन पशुओं को शिविर तक वापिस लाना और साथियों के सुपुर्द करना कठिन न था । पशु जंगल और उसकी हरियाली को देखकर इधर-उधर भागते थे, परन्तु कुत्तोंने उन्हें भटकने न दिया । अन्तमें कुछ समय तक तंग मार्गों से निकल कर वे खुले मैदान में पहुंच गए । तो इन्द्र ने कुछ लोगों से कहा "आप इन्हें लेकर वापस जाएं, और हम झरने के जल के रुकने का कारण मालूम करते

हैं। दिन का थोड़ा सा भाग शेष है, और यदि हम जल के स्रोत को काबू न कर पाये तो ये पशु ही नहीं, वरन् हमारे बाल-बच्चे और हम सब अल्प काल में यम लोक में पहुंच जायेंगे।

देवसेना में से एक व्यक्ति ने एक ऊंचे वृक्ष पर चढ़ कर चारों-ओर देखा, तो झरने का मार्ग दूर तक जल विहीन था। उससे परे कुछ पत्थरों का एक टीला सा था। विचार हुआ कि शायद उस स्थान पर बन्ध बांध कर जल का प्रवाह दूसरी ओर कर दिया गया है, और यह विचार ठीक ही निकला, क्योंकि आगे चलने पर एक और ऊंचे वृक्ष से देखने पर इस बात का विश्वास हो गया। कुछ आते हुए पथिकों ने यह भी बता दिया कि दस्यु सेना उस बंध की रक्षा कर रही है।

देवसेना दो भागों में बंट कर दो २ चार २ के समूह में दोनों ओर से आगे बढ़ी। पर्वतीय मार्ग चक्करदार थे, इसलिए बंध के रक्षकों को ऊपर जाने वालों के आने का पता न लगा। उनमें से कुछ धूप में लेट रहे थे, कुछ गप्पें हांक रहे थे, जब देवसेना उन पर टूट पड़ी। उन्होंने अपने आपको संभालने का यत्न किया, किन्तु आक्रमण सहसा था इसलिए कुछ न कर सके। उनमें से कई एक ने भाग कर अपने साथियों को सूचित करना चाहा, परन्तु देवसेना के बाणों ने इस यत्न को निष्फल कर दिया, और वह भागते हुए घायल होकर गिर गए।

अब देवसेना का दूसरा काम बंध को तोड़ना था, और यह कठिन न था। कुछ पत्थरों के हिलने की देरी थी कि जल स्वयमेव

वह निकला। इधर यह हो रहा था, उधर एक पुरुष सरमा के दांतों में पकड़ा हुआ चीत्कार से आकाश सिर पर उठा रहा था। उसे चिल्लाता देख कर इन्द्र ने कुत्ते को ललकारा। परन्तु सरमा के नेत्र लाल हो रहे थे, और वह स्वामी की आज्ञा मानने को उद्यत न था।

इन्द्र—(गरजते हुए) तुम कौन हो ?

पुरुष—दुहाई ! मुझे बचाइये !

इन्द्र—सरमा ! इसे छोड़ दो।

सरमा की पकड़ ढीली हुई, किन्तु उसके शिकार की टांग से रक्त बह रहा था, जिसे देख २ कर उसका हृदय बैठा जा रहा था।

इन्द्र –(खड्ग निकाल कर) तुम कौन हो और कहां से आये हो ?

पुरुष—(हाथ जोड़े हुए)..............पणि हूँ—बणज व्यापार............

इन्द्र—हमारे पशु तुमने हरे थे ?

पुरुष—(हाथ जोड़ते और पृथ्वी पर माथा रगड़ते हुए) नहीं सरकार.........पशु मैंने नहीं चुराये।

इन्द्र—असत्य कहते हो ? सरमा !

पणि—(इन्द्र के मुख की ओर निहार कर) मुझे कुत्तों से न फड़वाइये—मैं......

इन्द्र—सत्य कहो।

पणि—आपके पशु...........सरकार........हमारे..पणि

लोगों के पशुओं में मिल गये थे.........जंगल में............

इन्द्र—और तुम उन्हें हांक ले गये?...रात के समय?......बाप दादा का माल समझ कर?......सरमा!

सरमा दुम हिलाता हुआ आया, और पणि की ओर रक्त वर्ण नेत्रों से घूरने लगा।

इन्द्र—तुमने रात्रि में हमारे डेरों पर डाका डाला?

पणि—(कांपते हुए) नहीं महाराज! वह दस्यु थे।

इन्द्र—हमारे पशु तुम्हारे पशुओं के साथ स्वयं चले गये? ठीक है न?

पणि—महाराज! मैं झूठ नहीं बोलता।

इन्द्र—दस्यु कौन हैं?

पणि—वह नाग देवता के उपासक हैं। अहि देवता को पूजते हैं।

इन्द्र—और तुम?

पणि—हम उसे नहीं पूजते।

इन्द्र—क्यों? तुम क्यों उसे नहीं पूजते?

पणि—(थर्रा कर) वह काट खाता है।

इन्द्र—(हँसी को दबाते हुए) यह बंध किसने बांधा था।

पणि—(कुछ हौसला पा कर) यह दस्यु लोगों का काम है।

इन्द्र—वह कहां रहते हैं?

पणि—(पर्वत शिखर की ओर संकेत करके) वहाँ अहि

देवता का मन्दिर है, वह देवता जब क्रोधित होता है तो इस झरने के आगे लेटकर जल को रोक लेता है।

इन्द्र—दस्यु कहां रहते हैं ?

पणि—(सिर को खुजलाते हुए) वह मुझे मार देंगे (इन्द्र के मुख की ओर देख कर) यह कुत्ता मुझे काटेगा······वे मन्दिर की दूसरी ओर रहते हैं।

इन्द्र—तुमको हमें वहां ले जाना पड़ेगा—स्मरण रखो यदि कोई शरारत की, तो उसी समय तुम्हारा सिर पृथ्वी पर गिर जायेगा।

पणि—मैं मारा जाऊँगा·········मेरे बाल बच्चे······

इन्द्र—सावधान ! यदि अधिक बोले ! (खड्ग उठा कर) नहीं चलोगे तो अभी तुम्हारा सिर पृथ्वी पर जा पड़ेगा और········

पणि—(घबरा कर) मैं चलता हूँ।

——o——

अहि देवता के मन्दिर में बीणा बज रही थी। पुजारी नाच रहा था। और उसके साथ ही नाग देवता की लम्बी फण इधर उधर फिर रही थी, जब इन्द्र, अग्नि, मरुत, और अन्य शूरवीर खड्ग उठाये झपटे और क्षण भर में नाग देवता का सिर कट कर कहीं का कहीं जा गिरा। यह देख कर पुजारी उछला, उसके नेत्र लाल हो गये, मुख का रंग क्रोध से काला पड़ गया, और उसने कहा "यह कौन हैं ? खबरदार कोई जाने न पाए।"

परन्तु उसकी ललकार निष्फल रही। पूजा के लिए एकत्रित दस्यु निशस्त्र थे, और उनमें से कई एक देवसेना के शस्त्रों के शिकार हो गये। बाकी रहतों ने भागने में बुद्धिमत्ता समझी। पुजारी ने पूजा के खांडे से कुछ देर सामना किया, किन्तु जब यह असम्भव हो गया तो एक दम उछला और एक चोर दरवाजे से बाहर निकल कर पहाड़ियों में विलीन हो गया।

निशा का मुकदमा

"मुझ पर इलज़ाम लगाया गया है कि मैंने दस्यु और पणि लोगों के अन्दरूनी राज़ उनके दुश्मन देव लोगों को बताये। मैं पूरे ज़ोर से इन इलज़ामों की सेहत से इन्कार करती हूं। मैं मानती हूं कि देव लोगों में से एक महात्मा जिनका नाम अत्रि है मेरे यहां आये। दुनियां भर में कोई भी जाति ऐसी नहीं जिसके यहां मेहमान को ठुकराना धर्म कहा गया हो, और निशा के कबीले के लोगों की तो घुट्टी में यही डाला गया है कि वह अपने यहां आने वाले अतिथि को सिर आंखों पर बिठायें। उस कबीले की सरदार होते हुये मैं अपने फर्ज़ से कोताही करती, यदि मैं अत्रि जी को जगह न देती। उनके धार्मिक विचार अगर हम लोगों से नहीं मिलते तो न मिलें। जितने दिन उन्होंने मेरे यहां गुजारे हैं, और जो बातचीत मैंने उनसे की है, उससे मैं इस नतीजे पर पहुंची हूं, कि वह अगरचे अहि देवता के उपासक नहीं, यद्यपि वह देवता के नाम पर इन्सानी और हैवानी कुर्बानियों को परलोक सुधारने का जरिया नहीं मानते, क्योंकि वह विश्व प्रेम के मानने वाले हैं, परन्तु उनके धर्म में कोई बात ऐसी नहीं जिसके लिये दस्यु, पणि, और अन्य जातियां उनका विरोध करें। देवलोग मुसीबत में पड़ कर अपने वतन से निकले हैं। इसी प्रकार की मुसीबत किसी भी जाति पर पड़ सकती है। ऐसी मुसीबत में उन पर आक-

मरण करना और उन्हें देश से बाहर निकालना कम से कम मुझ और मेरे कबीले से नहीं हो सकता और नहीं होगा।"

निशा अपने स्थान पर बैठी, तो एक ओर से पुजारी की शक्ल उठती हुई दिखाई दी, और उसने सभा को सम्बोधित करके कहा--"निशा ने इस बात की उपेक्षा की है कि उसने हमारे रहस्य हमारे शत्रुओं को बताये। मैं उसके कथन की सत्यता में विश्वास नहीं करता, क्योंकि यह किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रखता कि देवता हम पर नाराज़ हुये, और अब हमें छोड़कर अपने लोक को चले गये हैं। हमें उन्हें पुनः स्थापित करने के लिये भारी तपस्या करनी पड़ेगी। रक्त की नदी में से लांघना पड़ेगा और फिर भी कहा नहीं जा सकता कि वह प्रसन्न होकर हमें दर्शन देंगे या नहीं ....इस सारी मुसीबत का कारण कोई घर का भेदी है, और वह है जिसके यहाँ हमारा एक शत्रु इस समय भी मौजूद है। स्वयं निशा ने यह माना है कि वह शत्रु हमारे धर्म को नहीं मानता, वह अहिदेव पर विश्वास नहीं करता, नां ही उन्हें बलि देनेमें विश्वास रखता है............आप लोगों को ज्ञात है कि उस मनुष्य ने हमें यह उपदेश दिया, कि हम हल चला कर, पृथ्वी माता के हृदय को फोड़ें। उस में बीज बो कर अनाज पैदा करें। और उस कृत्रिम उपज को अपने शरीर का अंग बना कर उसे कमजोर करें। आप से यह भूला नहीं कि उसने हमें यह शिक्षा दी, कि हम लकड़ियों को रगड़ कर उनके अन्दर से ज्योति पैदा करें, और उस पर अन्न को भून कर उसे तड़पायें, और फिर उसे खा जायें। दस्यु लोग

इस समय तक वृक्षों के प्राकृतिक फलों को खाते रहे हैं। शिकार करके या उन्हें पकड़ कर जानवरों के मांस से अपना पेट भरते रहे हैं, और उनकी पाचन शक्ति इतनी शक्तिशाली है कि वह इन सब वस्तुओं को खा कर डकार भी नहीं लेते। परन्तु इस व्यक्ति ने हमारी जाति को दुर्वल करने के लिये हमें उस चीज पर बनाई हुई चीजों को खाने का उपदेश दिया है जिसे वह "अग्नि" कहता है, और जिसे हाथ लगायें तो चमड़ा उतर जाता है। इतने पर ही बस नहीं, उस व्यक्ति ने हम में से कई एक को यह विश्वास दिलाया है कि यदि वह पृथ्वी माता के पेट में बड़ा सा छेद कर दें, तो उस में से जल निकलेगा जो हमारी पिपासा शान्त करेगा (अट्टहास करके) देवता हमें नदियों और झरनों का जल देते हैं, पर पता नहीं यह मनुष्य क्यों पृथ्वी माता का इतना शत्रु हो रहा है कि उसके पेट को फाड़े विना इसे चैन नहीं आता। ऐसा मनुष्य हमारे देवता का शत्रु है, पृथ्वी माता का शत्रु है, उसकी सन्तान का शत्रु है, और इस योग्य है कि उसे उसी अग्नि में जलाया और उसी गढ़े में फेंक कर दबा दिया जाय, जो उसने पृथ्वी माता के पेट में खुदवाना आरम्भ किया है। और उसे शरण देने वाली, शरण देकर उस पर गर्व करने वाली के प्रति मैं क्या कहूं? अहि देव का सिर कटवा कर, दस्यु लोगों को मरवाकर और उन्हें शत्रुओं के शस्त्रों का निशाना वनवाकर भी यदि आप लोग इस स्त्री को अपना सरदार बनाये रखना चाहते हैं तो देवता के शाप से छूटना असम्भव है।

पुजारी बैठ गया। उस समय वह कठिनता से अपने आपको वश में रख रहा था। परन्तु उसका यह नियन्त्रण काम कर गया, और सब उपस्थित गणों ने एक स्वर हो कर यह फैसला दिया कि "अत्रि को हाथ पांव बांध कर उसी नये कुएँ में फैंक दिया जाय और ऊपर मिट्टी डाल दी जाय जो इन लोगों की जल प्राप्ति के लिये उसने खुदवाना आरम्भ किया था। और निशा को आने वाले नौचन्दे मंगल को देवता की भेंट चढ़ा दिया जाय।"

मुक्ति

"अ..............ओ३.... ....म"

"अ..............ओ३..............म"

"यह क्या ? इन सुनसान जंगलों में यह आवाज़ कहाँ से आ रही है ?" रथारोहित अश्वनी कुमारों ने अपने सारथि से पूछा।

सारथी ने घोड़ों की बागें खेंचलीं। वह ठहर गये तो फिर एक बार "अ....................ओ३....................म"

"अ....................ओ३....................म"

यह शब्द पवन में गूंजते हुये कर्णगोचर हुये। कुमार रथ से उतरे और स्वर की दिशा में ध्यान देकर अग्रसर होने लगे। अभी कुछ दूर ही गये थे कि वही शब्द फिर वायु मण्डल में गुंजायमान हुये, परन्तु स्वर पहिले से धीमा था। कुमारों ने अपनी गति तीव्र कर दी। उन्हें विस्मय हुआ जब उन्होंने देखा कि कुछ दूरी पर पृथ्वी में एक गड्ढा खुदा है, और स्वर उसी में से आ रहा है। गड्ढे के निकट पहुंच कर उन्होंने स्वयं भी "ओ३म्" का नारा लगाया। यह शब्द जंगल के कोने २ में गूंज उठा, और थोड़ी देर में ही गड्ढे में से उसका उत्तर सुनने में आया।

कुमारों ने आगे बढ़ कर झांका, तो उनका आश्चर्य सीमा का उल्लंघन कर गया, जब उन्हें विदित हुआ कि कोई मनुष्य ग्रीवा तक मिट्टी में दबा हुआ उससे ऊपर उठने के लिये संघर्ष कर रहा है।

उस समय तक वह कठिनता से अपना सिर ऊपर निकालने में सफल हुआ था, और उस पर जमी हुई मिट्टी बता रही थी कि किसी ने उसे जीवित ही मिट्टी में समाधि देने में प्रसन्नता अनुभव की थी। कुमारों में से बड़े भ्राता ने आगे बढ़ कर कहा "मैं किस का शब्द सुन रहा हूं ?"

धीरे से उत्तर मिला "अत्रि"।

बड़े कुमार ने छोटे की ओर देखकर कहा, "अत्रि सप्त ऋषियों में से एक हैं, जो दीर्घकाल से लुप्त हैं" (गड्ढे वाले को सम्बोधन करके) "घबराइये नहीं, अश्विनी कुमार सेवा के लिये उपस्थित हैं"—यह कहा और जिह्वा को दोहरा करके सीटी बजाई तो शीघ्र ही उनका रथ गड्ढे के किनारे पर पहुंच गया। सारथी और अन्य रथारोहियों ने गड्ढे से उतर कर अत्रि को बाहर निकालने का यत्न आरम्भ किया। वह लोग उनके आस पास से मिट्टी उठाते थे और गड्ढे के ऊपर खड़े कुमार उसे दूर फेंक देते थे। रथ के घोड़ों को जल और दाना खिलाने के पात्र इस समय काम आ रहे थे।

पर्याप्त मिट्टी उठाने के पश्चात् महर्षि के हाथ नंगे हो गये, जिन्हें कटि के पीछे कस कर बांध दिया गया था। उन्हें खोल कर मुक्त किया गया। कुछ काल के पीछे उनकी टांगें दिखाई देने लगीं, परन्तु जब तक सारी की सारी मिट्टी निकल न गई यह ज्ञात न हो सका कि उन के पांव भी शक्तिशाली रस्सों से बंधे हैं।

महर्षि को उठा कर रथ में पहुंचाया गया, तो सुधि आने पर उन्होंने कहा, "आज क्या दिन है?"

अश्विनी—मंगल।

अत्रि—तो आज उस बेचारी की अहि के नाम पर हत्या की जायेगी।

अश्विनी—किस की?

अत्रि—निशा की।

अश्विनी—वह कौन है?

अत्रि—(कुछ काल के मौन के पश्चात्) वह देवी है जिसने काले माता पिता के यहां जन्म लिया है। जिसने काला शरीर प्राप्त करके देव लोगों का धर्म ग्रहण किया है। मैं उसे दस्यु माता पिता के यहां उत्पन्न होने पर भी "काली देवी" कहा करता हूं।

अश्विनी—उसका वध क्यों किया जा रहा है?

अत्रि—कथा लम्बी है, सारा शरीर दुख रहा है, इस कारण सुना नहीं सकता। थोड़े शब्दों में यह, कि वह उन लोगों में से एक है जिन्हें मैंने धर्म का मार्ग दर्शाया है, और जो वैदिक धर्म को ग्रहण करने का दण्ड प्रसन्नता पूर्वक सहन कर रहे हैं। निशा अपनी जाति की सरदार है, अहि के पुजारी ने उसे मृत्यु के घाट उतारने का यत्न किया है, और वह उसमें सफल मनोरथ हो गया है।

अश्विनी कुमार—आप दुखित न हों, परम पुरुष की आज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता। स्यात उस देवी की जीवन रक्षा करने

और आपको दुख से छुड़ाने के लिये ही हमें इस ओर भेजा गया है। यद्यपि हमारी संख्या थोड़ी है, परन्तु एक देवी के जीवन के लिये हम अपने प्राणों की आहुति दे कर प्रसन्न होंगे।

नव चन्द्र अभी एक सप्ताह का नहीं हुआ था पर उसका प्रकाश निर्मल था। इसलिये दूरस्थ वस्तुयें रात्रि का कुछ भाग बीतने पर भी दृष्टिगोचर हो रही थीं। वायु में अहि की जयकार की ध्वनी गूंज रही थी, और दस्यु लोग पुजारी की मोहिनी के वशीभूत हो कर अपनी ही सरदार को बलिदान करने के लिये बलि के स्थान पर पहुंच गये थे। वहाँ पर एक भारी लट्ठ, जिसे "यूप" कहा जाता था, पृथ्वी में गड़ रहा था। पुजारी लोगों के बढ़ते हुये रोष में वृद्धि करने के लिये जोर २ से सिर मार कर कह रहा था, "आज देवता प्रसन्न होंगे, जाति के शत्रु का रक्त पी कर उनका क्रोध शान्त हो जायगा, और वह दस्यु लोगों को हर प्रकार की ऋद्धि सिद्धि दे कर सम्पन्न कर देंगे"।

चारों ओर निस्तब्धता का साम्राज्य था। निशा को यूप से बांधा गया, उसके दोनों हाथ कमर के पीछे बांध दिये गये, और उसे सम्बोधन करके जल्लाद ने कहा—"निशा! तुम आज तक अपने कबीले की सरदार रही हो, तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये कि उस कबीले को मुसीबतों से बचाने के लिये तुम देवता के सामने जीवन की बलि दे रही हो। इस अन्तिम समय में यदि तुम कुछ

कहना चाहती हो तो परशा उठाने से पहिले तुम्हें उसके लिये अवसर दिया जा सकता है"।

लोगों के चलते हुये श्वास रुक गये, जब निशा का उच्च स्वर वायु मण्डल में गूंजा। उसमें न भय था न शोक। उसने कहा "जाति के लोगो! मैं तुम्हें अपनी सन्तान समझती रही हूं। मैंने सदैव अपने दुखों को भूल कर तुम्हें सुखी करने का यत्न किया, और अब भी यदि मेरा जीवन ले कर तुम सुखी हो सकते हो तो मैं समझूंगी कि मैंने अपना जन्म सफल कर लिया। परन्तु मुझे इस में सन्देह है, क्योंकि मेरे शरीर को काटा जाने वाला है इसलिये नहीं कि देवता मुझ से अप्रसन्न हैं, न इसलिये कि मैंने देवता की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य किया है, वल्कि इसलिये कि देवता का पुजारी मुझ से क्रुद्ध है"........................

"यह ग़लत है", पुजारी ने उछल कर कहा। 'झूठ बोलती है। बकवास करती है।"

"पुजारी को बीच में दख़ल देने का कोई अधिकार नहीं" एक ओर से आवाज़ आई।

"कौन बकता है?" पुजारी ने क्रोध से फुंकार कर कहा।

निशा का स्वर फिर उच्च हुआ—"पुजारी जी क्रोध में हैं, यदि मेरा रक्त उनके क्रोध को शान्त कर सकता है तो वह उपस्थित है। परन्तु मैं फिर कहती हूं पुजारी जी ने देवता का नाम ले कर हम लोगों के अतिथि सत्कार पर जो धब्बा लगाया है यह

मेरे रक्त से नहीं मिटेगा......................."

"बकवास ! बकवास ! बकवास !! मैं जोर से कहता हूं" ।

उसी समय एक सरसराता हुआ वाण पुजारी के कन्धे पर लगा, और वह त्योरा कर गिरा । वाणों की बौछाड़ चारों ओर से होने लगी, और लोग घबरा कर भागने लगे । थोड़े समय में ही यूप से बंधी हुई निशा के सिवा वहां कोई न रहा । उस समय एक पत्थर के पीछे से कुछ व्यक्ति निकल कर यूप की ओर बढ़े, और निशा के बन्धन काटते हुये बोले "काली देवी ! आप अपने आप को मित्रों के मध्य में समझें ।"

पर वह बेसुध थी ।

अत्रि की कथा

महर्षि अत्रि के आने का समाचार दावानल की भांति समस्त देव वस्तियों में फैल गया, और लोग झुण्ड वांध २ कर उनके दर्शनों को आने लगे। परन्तु महर्षि इतने दुर्बल थे कि जनता की दर्शनाभिलाषा को पूर्ण करना उनकी शक्ति के बाहर था। कई दिनों के पीछे जब अश्विनी कुमारों की अमोघ औषधियों से वह इस योग्य हुये कि गद्देदार सिरहाने के आसरे बैठ कर अपनी कथा धीरे २ सुना सकें, तो उन्होंने कहा—

"आप लोगों को ज्ञात है कि जब देवलोक पर आपत्तियां आईं हम लोग किसी अन्य द्वीप में थे। इसके पश्चात् जब भगवान् मत्स्य की भविष्यवाणी के अनुसार उस देश में हिम और जल प्रवाहित होने लगे, तो हम महाराज मत्स्य की नौका में जल पर आरूढ़ हो कर चले। किधर २, और कहां २, यह बताना असम्भव है। क्योंकि इसका स्वयं हमें कोई ज्ञान नहीं। रात्रि के पश्चात् दिवस, और दिवस के पश्चात् रात्रि,—कितनी रात्रियां और कितने दिन—यह भी कहना सुगम नहीं, हम इधर से उधर और उधर से इधर मारे २ फिरे। उसके पश्चात् एक स्थान पर जिसे हमने मनु जी के नाम पर "मनुअवसर्पण" कहा, नौका से एक पर्वत पर उतरे।

मत्स्य जी हमें उस स्थान पर अपना अन्तिम उपदेश देकर वापिस चल दिये। अपने शरीरों की ऐंठन को दूर करते हुये नाव

की शेष सामग्री पर हम लोगों ने थोड़े दिन निर्वाह किया, फिर त्रिविष्टप के मैदान में से लांघते हुये सरस्वती नामी महानद से पार होकर, मनु जी की आज्ञानुसार, भगवान् मत्स्य के उपदेश और वैदिक धर्म के संदेश को इस ओर के संसार में बसने वाले लोगों तक पहुंचाने के लिये सारी दिशाओं में फैल गये, क्योंकि हमारे पास सबसे मूल्यवान वस्तु यही धर्म था। मैं इन पर्वतों में आया, परन्तु इन देशों में घूमा तो इन लोगों की भाषा को समझ न सकता था। न ही वह मेरी भाषा से परिचित थे। इसलिये आरम्भ में बहुत सी कठिनाइयों का सामना हुआ। वह लोग मुझे किसी दूसरे जगत से आया हुआ समझते थे, क्योंकि हम लोगों का रंग ढंग उनसे पूर्णतः भिन्न था। हमारा रहन सहन भी उनके लिये अचम्भा था, और जब मैंने अरणी को रगड़ कर अग्नि का प्रकाश किया तो वह भयभीत हो गये, क्योंकि उन्होंने यह चमत्कार पहिले नहीं देखा था। आकाश में मेघ घिर आने पर विद्युत को कड़कते और चमकते देखकर वह भयभीत होते रहे थे, इसलिये जब उन्होंने उसी रूप को काष्ठ में से बाहर आते देखा, तो उनके विस्मय का कोई ठिकाना न रहा। पर धीरे २ हमारा परिचय बढ़ने लगा और अल्प काल के पश्चात् वह मेरी टूटी फूटी भाषा को समझने में समर्थ हो गये।

उस समय उनकी सरदार निशा नामी स्त्री थी। मुझे उसके सामने प्रस्तुत किया गया, और जब मैंने आत्मिक बल के कुछ चमत्कार उसे दिखाये, तो उसके हृदय में वैदिक धर्म को सीखने

और उसकी विशेषताएं समझने की इच्छा उत्पन्न हुई। मैंने उसकी इच्छा का आदर किया, और थोड़े ही समय में उसके यहां कई प्रकार के यज्ञ याज्ञ आरम्भ हो गये, जिसमें उसकी जाति के लोग, जो उसी की सन्तान थे, बहुत उत्सुकता प्रगट करते थे। परन्तु यह बात उन पुजारियों को भली न लगी, जो अहि की उपासना से उन लोगों को अपना दास बनाये थे। इसलिये वह मेरे शत्रु हो गये। परन्तु मैंने कभी उन्हें ऐसा अवसर नहीं दिया जिससे वह स्वतन्त्र रूप में मेरा विरोध कर सकें। समय बीतता गया, और मैंने उन लोगों को कृषि कार्य सिखाने का यत्न किया, जिससे वह सुगमता से अपना पेट भर सकें। वह उस समय तक वन्य पशुओं के मांस और फल फूल पर अपना निर्वाह करते थे। पुजारी ने मेरे इस यत्न को भी सन्देह की दृष्टि से देखा। उसकी द्वेषाग्नि बढ़ती ही चली गई, और उसका अन्तिम परिणाम उस समय निकला जब आप लोगों ने अहि को मार कर पुजारी को मन्दिर से बाहर भगा दिया। उस समय उसने लोगों में मेरे और निशा के (जिसे मैं आरम्भ से ही 'काली देवी' कहता रहा हूँ, क्योंकि वह सत्य ही काले वर्ण में देव लोक की स्त्री है) विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया, और मुझे पकड़ कर यंत्रगृह में डाल दिया, जहां पर तुषाग्नि ❀ जलाकर मुझे फूंकने का यत्न किया गया। परन्तु योग की सिद्धियां मेरे काम आईं, और थोड़े समय में ही यह शरीर उन अग्नियों से जीवित बचने में सफल हो गया। तत्पश्चात्

❀ धान के छिलकों की आग

उन्होंने मुझे उस कूप में डाल कर मिट्टी से ढांप दिया, जिसे मैंने उन लोगों के जल प्राप्ति के कष्ट निवारण के लिये खुदवाया था। उसमें से अश्विनी कुमारों ने जिस प्रकार मुझे निकाला, वह आपको ज्ञात ही है।

मैं उस समय बेसुध था जब कुमारों का रथ काली देवी को शत्रु के चंगुल से छुड़ा कर अपने यहां ले आया। परन्तु मुझे जीवन भर का हर्ष तब प्राप्त हुआ, जब मैंने यह सुना कि वह देवी जीवित है। इन सब बातों में परम पिता परमात्मा का हाथ कार्य कर रहा है, और अपने आपको अपनी जाति में देख कर मेरा सिर विवश उनके चरणों में झुका जाता है।

देवियां युद्धभूमि में

"देवियो और देव लोगो ! क्या आपको यह बताने की आवश्यकता है कि दस्यु लोगों ने—नाग लोगों ने, नहीं २ सर्पों ने, हमारी गायों का वध कर दिया है, हमारे वृषभों की हत्या की है, हमारे अश्वों को चोरी से हर लिया है। वेद, परमात्मा की ×वाणी कहती है कि ऐसा करने वाला दया का पात्र नहीं,❋ इस प्रकार के लम्पट, चरित्र हीन, दस्यु सीसे की गोली से उड़ाये जाने योग्य हैं। अग्नि के मुख में झोंके जाने+ चाहियें। वे नष्ट किये जाने के अधिकारी हैं। हमने आज पर्यन्त इन लोगों से नम्रता का बर्त्ताव किया। आज तक हमने उनके प्रत्येक ऐसे कार्य की ओर से नेत्र मूंदे। परन्तु हमारे इस व्यवहार को हमारी दुर्बलता समझा गया। हमारे हृदय के कोमल भावों को कायरता का रूप दिया गया। पर अब जल सिर से लांघ गया है। इसलिये उठो, तैयार हो जाओ। झंडे हाथ में लेकर उन्हें शत्रुओं के दुर्गों पर गाड़ने की चेष्टा करो। इन दस्यु लोगों पर, इन राक्षस और असुर लोगों पर, धावा बोल कर इन्हें बता दो कि देव लोग किस मिट्टी से बने हैं। इस युद्ध में निश्चय विजय हमारी है÷ अभ्युदय हमारा होगा। शत्रु सेना निस्सन्देह परास्त होगी। हमसे शत्रुतारखने

×अथर्ववेद ११-१०-१ ❋अथर्ववेद १-१६-४

+अथर्ववेद ४-३६-२ ÷अथर्ववेद १०-९-३१

वाले किसी पिता के पुत्र हों, किसी माता की कोख से निकले हों, हमारे तेज की अग्नि में झुलस जायेंगे। हम उनके तेज को, प्राण को, आयु को हर लेंगे। हम उन्हें पृथ्वी पर पटक कर मिट्टी का लोथड़ा बना देंगे (स्त्रियों से सम्बोधित होकर) बहिनों ! शत्रु तुम्हें अबला समझते हैं, तुम्हें गाजर मूली विचार करते हैं। उन्हें ज्ञात नहीं कि इनके कोमल चर्म के भीतर लोह हृदय कार्य कर रहे हैं। वह नहीं जानते* यह वीरांगना हैं, वीर पत्नियां हैं, वीर पुत्रियां हैं। मृत्यु को विजय करने वाले मरुत इनके सखा हैं। हां, हां, शत्रु को बताना है कि हम वीर पुत्रों को उत्पन्न करने वाली हैं। तेजस्विनी पुत्रियों को जन्म देने वाली हैं, जो अपनी ओर आंख उठाकर देखने वाले की आंखें फोड़ देने की शक्ति रखती हैं। इसलिये अब साहस करके उठो। कटार हाथ में लो, और दस्यु लोगों के रक्त से पर्वतों को लाल कर दो। निश्चय तुम्हारे हुंकार से, तुम्हारे नारों से, जगत का यह उच्चतम पर्वत कांप उठेगा। तुम्हारे भ्राता, तुम्हारे पिता और तुम्हारे पुत्र अपने हृदय के रक्त से तुम्हारे लिये मार्ग बना रहे हैं। अब तुम्हें उनके समक्ष खड़े होकर यह बताना होगा कि देव स्त्रियां अपनी रक्षा के लिये किसी पर निर्भर नहीं"।

यह शब्द थे जो देव और देवियों की सभा को सम्बोधित करके श्रद्धा ने कहे। उस समय उसका मुख लाल हो रहा था, नेत्र रक्त वर्ण हो रहे थे, अधर फड़फड़ा रहे थे। दस्यु लोग धोखे,

*अथर्ववेद १०-८६-६ तथा १०-१५६-१

फरेब और मकर प्रत्येक सम्भव उपाय से देव लोगों को नष्ट करने पर कटिबद्ध हो गये थे। वह पुरुषों को वध करने, और स्त्रियों को बलात उठा ले जाने पर तुले हुये थे। श्रद्धा देवी का मन इन बातों को जान कर अत्यन्त दुखी हो चुका था। अपने भाषण के अन्त में उसने कहा—"देव स्त्रियों के वाहन इस समय तक अश्व और वृषभ आदि रहे हैं, पर आज से हम सिंह को दास बनाकर उस पर आरोहण करके शत्रुओं का दमन करेंगी, और निश्चय जो स्त्रियां इस भयंकर जीव पर सवारी कर सकती हैं, उनके सन्मुख ठहरने का साहस किसी को नहीं हो सकता।"

देव शूरवीरों की एक टुकड़ी इन्द्र के सेनापतित्व में वृत्र के दुर्गों को नष्ट भ्रष्ट करने के लिये निकली, और दूसरी नवयुवक अग्नि की आज्ञा में शत्रु को धराशायी करने के लिये आगे बढ़ी, परन्तु श्रद्धा की सेना की शान इन दोनों से निराली थी, जिसके एक भाग की सरदार इन्द्राणी शचि थी। श्रद्धा का सिंह उनके आगे २ अपनी दहाड़ से पर्वतों में गूंज उत्पन्न कर रहा था। स्वयं श्रद्धा धनुष बाण, खड़ग, त्रिशूल और अन्य शस्त्रों से सज्जित होकर अपनी सेना को वीरोचित कार्यों के लिये उभार रही थी। नवयुवकों ने जिस समय अपनी माताओं और भगिनियों को समर भूमि में बढ़ते देखा, वीरता के मद से उनके रक्त खौलने लगे, और वह किलकारियां मारते हुये शत्रु पर टूट पड़े। दस्यु खुले मैदान

में युद्ध करना नहीं चाहते थे, परन्तु जब इन तीनों टुकड़ियों ने सब ओर के मार्ग रोक लिये, तो उन्हें अपनी जातीय शूरवीरता से काम लेते हुये सामने आना पड़ा। वृत्र स्वयं इन्द्र से भिड़ा, मेख अग्नि के सन्मुख हो गया, और उसके दो शूरवीर जरनैल बिडाल और महाहनु श्रद्धा और शचि के सामने आ गये। परन्तु कुछ काल के युद्ध ने ही दस्यु लोगों को बता दिया, कि रात को चोरों की भांति छिपकर अन्धेरे में वार करना और बात है और रण-क्षेत्र में, विस्तृत आकाश के नीचे, सूर्य देव की पैनी दृष्टि के सन्मुख, शत्रु से भिड़ना कुछ और। क्योंकि थोड़े से युद्ध के पश्चात ही बिडाल और महाहनु की सेनायें नष्ट भ्रष्ट हो गईं, और वह दोनों उनका धैर्य बढ़ाते २ धराशायी हो गये।

सेना की सफें टूटती देखकर मेख ने एक नवीन सेना चिकशोर के सेनापतित्व में श्रद्धा और शचि की बढ़ती हुई सेना को रोकने के लिये भेजी। चिकशोर अपने युग के प्रसिद्ध वीरों में से था, और उसने सन्मुख आते ही सेनापति को युद्ध में लल-कारा। प्रत्युत्तर में श्रद्धा के सिंह ने एक छलांग लगाई, और दूसरे क्षण में देवी का त्रिशूल चिकशोर के वक्ष पर पड़ा, पर उसने पैंतरा बदल कर वार खाली दे दिया।

त्रिशूल का वार खाली देखकर श्रद्धा के शरीर में आग का एक भबूका दौड़ गया, और उसने बाण वर्षा से शत्रु को ढांप दिया। उस समय यह प्रतीत होता था कि वह दो नहीं, आठ हाथों से युद्ध कर रही है, क्योंकि तीर, तलवार, गदा, त्रिशूल सबकी खट-

खटाहट का शब्द हो रहा था, और किसी को भी यह सोचने का समय न मिलता था, कि कौन सा शस्त्र किस समय उसके हाथ में आता और शत्रु के शरीर में घुस जाता था। चिकशोर तलवार का धनी था, परन्तु श्रद्धा के शस्त्रों ने उसकी सिट्टी गुम कर दी, और शूरवीरता से युद्ध करने पर भी वह शत्रु के आक्रमण को रोकने में सफल न हो सका। उसे अपने सन्मुख, पार्श्व में, दायें, बायें एक ही मूर्ति दिखाई दे रही थी, और यह श्रद्धा की मूर्ति थी, जिसके भयानक सिंह की दहाड़ सब ओर लोगों को भयभीत कर रही थी।

ऐसी दशा में मुकाबले का देर तक जारी रहना असम्भव था, और मेख अवसर की गम्भीरता को जानकर अपने सरदार की सहायतार्थ आगे बढ़ा, पर उसके पहुंचने के प्रथम ही चिकशोर* रक्त में लोट रहा था। चिकशोर को गिरता देखकर मेख की आंखों में रक्त उतर आया और उसने घोड़े को जोर से एड़ लगाई। धैर्य-

* डाक्टर एल० डडले स्टैम्प (Dr. L. Dudley Stamp D. Sc. B. A. M. S. P. T. अपनी पुस्तक 'एशिया' ('Asia') के पृष्ठ २८८ पर साइबेरिया में रहने वाली जातियों के विषय में लिखते हुये एक प्राचीन जाति का नाम चकची (Chukchee) बताते हैं, जो अज्ञात काल (From Pre historical times) से इस प्रदेश में बसती है। इसी प्रकार की अन्य जातियां कोरियक्स (Koryaks), कमच्डल (Kamchadals), गिलयक (Gilyak) आदि हैं जो साइबेरिया के अत्यन्त उत्तर पूर्व और शान्त महासागर के तीर के निकट बसती हैं।

वान घोड़े ने चारों पांव उठा कर छलांग लगाई, परन्तु युद्ध की गर्मा गर्मी में श्रद्धा का सिंह जोश में आ गया था, और घोड़े को सामने देख कर उसने उसे गले से दबोच लिया।

मेख के घोड़े ने अपने आपको छुड़ाने के लिये जोर से शरीर को झिंझोड़ा। परन्तु सिंह की पकड़ ढीली न हुई। उसने फिर जोर मारा, किन्तु पीछा छुड़ाना सुगम न था। मेख समय की गम्भीरता को समझ कर घोड़े को छोड़ना चाहता था, परन्तु अश्व और सिंह के युद्ध ने उसे पृथ्वी पर गिरा दिया, और अभी उठ न सका था कि श्रद्धा के त्रिशूल ने उस के हृदय का रक्त पान कर लिया।

मेख के पतन के साथ ही देवियों की सेना ने दस्यु सेना पर धावा बोल दिया। "श्रद्धा देवी की जय" "देव सेना की जय" के नारे चारों ओर गूंजने लगे। सरदार की मृत्यु ने दस्यु सेना का धैर्य तोड़ दिया। और वह थोड़ी देर में ही भागने पर उतारु हो गई। परन्तु भागने के लिये मार्ग कहां था?

निशुम्भ से युद्ध

"महाराज निशुम्भ की यह इच्छा है कि वह देव लोगों से मित्रता का सम्बन्ध बनाएँ"।

"उनकी यह इच्छा पवित्र है और निश्चय देवलोग इस इच्छा का निरादर नहीं करेंगे"।

"इस इच्छा की पूर्त्ति के लिये उन्होंने आप की सेवा में एक सन्देश भेज कर मुझे आज्ञा दी है, कि मैं आपकी सेवा में उपस्थित हो कर यह सन्देश दूँ'– यह शब्द थे जो हिमालय की तराई के दस्यु राजा निशुम्भ के दूत धूम्राक्ष ने देवी श्रद्धा को कहे।

श्रद्धा—यदि दस्यु राजा देव लोगों के साथ मित्रता करना चाहते हैं तो आप को हमारे महापितृ की सेवा में जाना चाहिये।

धूम्राक्ष—मुझे यह सन्देश आप की सेवा में कथन करने की आज्ञा है।

श्रद्धा—यदि आप और आप के राजा का यही आग्रह है कि मैं ही इस सन्देश को सुनूं तो कथन कीजिये।

धूम्राक्ष—इस आज्ञा के लिये धन्यवाद! महाराज निशुम्भ ने देव और दस्यु लोगों के झगड़े की बात सुनी है। उन्हें ज्ञात है कि देव लोग उन देशों में बसना चाहते हैं जो दस्यु लोगों की

सम्पत्ति हैं। महाराज निशुम्भ उन्हें अपने देशों में स्थान देने को उद्यत हैं।

श्रद्धा—देव जाति महाराज निशुम्भ की इस कृपा के लिये कृतज्ञ है।

धूम्राक्ष—महाराज की इच्छा है कि यदि देवलोग उनके देश में बसना चाहते हैं तो उन्हें विदेशियों नहीं बल्कि देशवासियों की भांति यहां रहना होगा।

श्रद्धा—महाराज की यह इच्छा भी बहुत शुभ है।

धूम्राक्ष—महाराज चाहते हैं कि देव लोगों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित करें, जिस से दोनों जातियां परस्पर एक दूसरी का अंग बन कर एक हो जायें ....।

महाराज ने देव स्त्रियों की सुन्दरता की वार्ता सुनी है, और वह चाहते हैं कि उनके देशवासी इन स्त्रियों से विवाह करके सुन्दर सन्तान उत्पन्न करें। इस विषय में महाराज स्वयं आदर्श स्थापित करना चाहते हैं। इसलिये मुझे उनकी ओर से आप से यह कहना है कि आप महाराज निशुम्भ के अन्त:पुर को सुशोभित करें। इससे महाराज की इच्छा भी पूर्ण होगी और उनकी प्रजा भी कृतज्ञ होगी।

श्रद्धा—(मुस्कराते हुये) मैं महाराज की कृपा दृष्टि के लिये कृतज्ञ हूं। पर उनकी आज्ञा-पूर्ति के मार्ग में एक बाधा है।

धूम्राक्ष—क्या ?

श्रद्धा—जब मैं अल्पायु ही थी, तो मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं उस व्यक्ति से विवाह करूंगी जो मुझे युद्ध में जीत लेगा। इसलिये यदि दस्यु महाराज मुझे अपनी सेवा का अवसर देना चाहते हैं, तो उन्हें मुझे युद्ध में जीतना होगा।

धूम्राक्ष—आज महाराज के भय से जगत् कांप रहा है। वह जैसे युद्धवीर हैं, इसे हम जानते हैं। आप उन्हें ललकार कर अपनी जान पर खेलना चाहती हैं, पर वह आप को अपनाना चाहते हैं।

श्रद्धा—मैं यह सब जानती हूं, परन्तु प्रतिज्ञा से बंध रही हूं। उसे तोड़ना मेरे लिये सम्भव नहीं। यह प्रतिज्ञा स्यात अनजाने से हुई, परन्तु जो हो चुका उसे वापिस लेना मेरे वश में नहीं।

श्रद्धादेवी अपनी सखियों के साथ हिमालय के शिखरों का भ्रमण कर रही थीं। सामने हिमाच्छादित पर्वत थे, जिनमें से सरस्वती और ब्रह्मपुत्र एक ओर, और सिन्ध, और शतद्रु दूसरी ओर निकल कर ऐसे चले जा रहे थे मानो भाई बहिन परस्पर लड़ झगड़ कर रूठ रहे हों। दूरी पर देवदारु और चील के गगनचुम्बी वृक्ष खड़े थे। नीचे वादियाँ समतल भूमि की न्यांई हरी मखमल का परिधान ओढ़े लेट रही थीं। श्रद्धा इस दृश्य को देख कर खोई सी गई थी। देव लोक का कोई दृश्य उसके सामने आकर उसकी विचार धारा को कहीं से कहीं ले जा रहा था, जब कि यह जादू टूटा और उसने देखा, कि एक शक्तिशाली हाथ उसकी भुजा

पर पड़ कर उसे एक ओर घसीट रहा है। ऐसा अनुभव होते ही उसने जोर से भुजा को झटका दिया, जिससे वह हाथ छूट कर पीछे गिरा। उस समय उसकी जिह्वा से निकला "तुम कौन हो? और मेरा हाथ पकड़ने से तुम्हारा क्या प्रयोजन था?"

व्यक्ति—मैं महाराज निशुम्भ का सेनापति रक्तबीज हूं। मुझे आपको महाराज की सेवा में ले जाने की आज्ञा हुई है। यदि आप प्रसन्नता से वहां न चलेंगी, तो मुझे शक्ति का उपयोग करने की आज्ञा है।

श्रद्धा—शक्ति का उपयोग करोगे हम पर? क्या तुम्हारे देश की यही रीति है?

रक्तबीज—महाराज की आज्ञा पूर्ति आवश्यक है।

श्रद्धा—क्या उन्हें हमारा सन्देश नहीं मिला?

रक्तबीज—मिला है, पर वह स्त्री के मुकाबले में शस्त्र उठाना नहीं चाहते, इसलिये मुझे यहां आने की आज्ञा दी है।

श्रद्धा—(घृणा से) वह स्त्री के विरुद्ध शस्त्र उठाना नहीं चाहते, पर उसके साथ बल प्रयोग करना चाहते हैं?

रक्तबीज—(आगे बढ़ कर) आप को मेरे साथ चलना ही होगा।

श्रद्धा ने अभी इसका उत्तर भी न दिया था कि शचि देवी का खड्ग रक्तबीज के कन्धे पर पड़ा। यह देखते ही रक्तबीज ने ताली बजाई। और चारों ओर से कई दस्यु वीर स्त्रियों की इस छोटी सी टोली पर टूट पड़े।

श्रद्धा की दृष्टि इस सारी लीला को एक क्षण में भांप गई, और उसने अपनी सहेलियों को एक चट्टान की ओट में जाने की आज्ञा दे कर धनुप पर प्रत्यंचा डाल दी और कुछ ही क्षण में उसके बाणों ने पर्वत शिलाओं को शत्रुओं के रक्त से रंग कर रक्तबीज को सदा की नींद सुला दिया।

रक्तबीज की मृत्यु देव बस्ती पर दस्यु सेना के आक्रमण का प्रारम्भ थी। इसका समाचार मिलते ही निशुम्भ की सेना उस बस्ती पर चढ़ दौड़ी। परन्तु श्रद्धा शिवर को सूचना दिये बिना ही उसके लिये तैयार थी। उसकी संगठित सेना की एक टुकड़ी काली देवी की अध्यक्षता में शत्रु को विध्वंस करने के लिये उसका मार्ग देख रही थी, और उसे आता देख कर उसके स्वागत को आगे बढ़ी। काली देवी के शरीर पर गजचर्म, गले में मुण्ड माला, और हाथ में कटार थी, जिसने उसे एक वीभत्स रूप दे रक्खा था। शत्रु को सामने देख कर उसने भीषण नाद किया, और उसके रक्तपान को पिल पड़ी। युद्ध घमसान का हो गया। चारों ओर मनुष्यों के शरीर पृथ्वी पर लोटते हुये दीख पड़ने लगे। काली देवी का रूप देख कर दस्यु सेना के सैनिक कांप उठे। वह जिधर पड़ती परों के परे साफ कर देती, जिस ओर झुकती, दस्यु भागते हुये दृष्टिगोचर होते। निशुम्भ के सेनापति चुण्ड और मुण्ड उसके सन्मुख आये, पर उसके सामने ठहरने का साहस किस में था ? थोड़ी देर में ही वह इन दोनों शूरवीरों के

सिर काट कर श्रद्धा देवी की सेवा में जा उपस्थित हुई। उस समय उसे देखकर श्रद्धा ने कहा, "काली! चुण्ड मुण्ड के सिर काट कर तुम 'चामुण्डा' हो गई"।

रण क्षेत्र में धूम थी। काली, चण्डी, अम्बिका, सरस्वती, शचि, रुद्राणी, वाराही, वैष्णवी, नरसिंही तथा अन्य देवियां अपने २ स्थान पर शत्रु का नाश कर रही थीं, जबकि महाराज निशुम्भ का एक दूत श्रद्धा देवी की सेवा में शान्ति का सन्देश ले कर उपस्थित हुआ। इसके उत्तर में कहा गया कि दस्यु लोगों के अत्याचार के पश्चात् सन्धि केवल एक ही शर्त पर हो सकती है, कि वह लोग इन प्रदेशों को छोड़ कर सिन्धु और सरस्वती के मार्ग से इन नदियों के पाताल* में चले जायें। जब यह उत्तर निशुम्भ को सुनाया गया, तो उसने घृणायुक्त हंसी हंस कर सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। परन्तु श्रद्धा देवी के रूप में आदि शक्ति उसे नष्ट भ्रष्ट करने को युद्ध क्षेत्र में आ चुकी थी, और उसके सामने खड़ा होना असम्भव था।

निशुम्भ ने शूरवीरता दिखाई। उसकी खड्ग ने मृतकों के ढेर लगा दिये। उसके सेनानियों ने प्राण हथेली पर रख कर शत्रु को

---

* डेल्टा (Delta)। नदी जब कई शाखाओं में विभक्त हो कर सागर में गिरती है तो उस स्थान को "डेल्टा" या "पाताल" कहते हैं। पाताल पाओं के दूसरी ओर स्थित पृथ्वी का भी नाम है।

विजय करने का यत्न किया। युद्धभूमि में दोनों सेनाओं के सरदार आमने सामने हो गये, तो निशुम्भ ने श्रद्धा को सामने देख कर कहा, "लो मैं आ पहुंचा। तुम्हें जीत कर तुम्हारी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके आज मैं तुम से अपने रणवास की शोभा बढ़ाऊंगा। निश्चय हमें तुम्हारे जैसी सुन्दर और वीर स्त्री की आवश्यकता है।"

श्रद्धा ने "मैं आपके स्वागत को उपस्थित हूं" यह कहा और बाणों की झड़ी लगा दी, जिसने निशुम्भ को नीचे, ऊपर, दायें, बायें से ढक दिया। वह इन बाणों को काटता हुआ बोला "देव कन्या! हम स्त्री पर हाथ उठाना नहीं चाहते, इसलिये तरह देते रहे। पर अब तैयार हो जाओ।"

यह कहा और गदा हाथ में लेकर वह शत्रु के सिर पर छोड़ना चाहता था, कि हाथ उठे का उठा रह गया, श्रद्धा के धनुष से निकले हुए एक अर्ध चन्द्र बाण ने उसे गदा सहित काट कर कहीं से कहीं फैंक दिया। निशुम्भ अभी यह भी समझ न सका था कि क्या हुआ है, कि दूसरे बाण ने उसका सिर काट कर दस्यु सेना में हाहाकार मचा दी। दस्यु सेना के बचे खुचे सैनिक भागे। देवियों की सेना ने उनका पीछा करना चाहा, पर उनके सरदारों ने यह कह कर रोक दिया, कि भागते हुए पर वार करना देव सभ्यता के विरुद्ध है।

कालिका, चण्डीगढ़ और अम्बाला के नगर काली, चण्डी और अम्बिका के नाम पर बसे।

गरुड़ और नाग

"माता ! क्या हम सदैव से दास ही थे, और सदैव दास ही रहेंगे ?"—सौतेले भाइयों के अत्याचारों से दुखी गरुड़ ने माता वनिता से कहा। इस छोटी सी आयु में इन अत्याचारों को देख कर उसके हृदय पर जो आरे चलते थे, उनका ब्योरा इन थोड़े से शब्दों ने दे दिया। आज पर्यन्त उसने कभी अपनी माता के सन्मुख जिह्वा नहीं खोली थी, तो भी वह उसके आन्तरिक भावों को भली प्रकार समझती थी। पर आज जब वह बोल ही पड़ा, तो मां न लम्बा श्वास लेकर कहा—

मां—बेटा ! प्रारब्ध के लिखे को कौन मेट सकता है ?

गरुड़—प्रारब्ध ! माता वह कौन है ? उसने हमारे लिये सदैव की दासता और नागों के लिये सदैव का राज्य क्यों लिख रक्खा है ?

प्रश्न छोटा सा था, पर वह जिसकी समस्या बड़े २ विद्वान भी अभी तक नहीं कर पाए, क्योंकि वह नहीं जानते कि वह कौन सी शक्ति है जो मनुष्य की इच्छा के मार्ग में खड़ी होकर उसे चकनाचूर कर देती है। कहते हैं, कि ऐसे ही किसी विद्वान से किसी ने पूछा—"तूने भगवान को कैसे जाना" ? तो उसने उत्तर दिया, "अपनी इच्छाओं की अपूर्ति से।"

इसी भांति माता वनिता के नेत्रों से अश्रु धारा बहने लगी। यह देख कर गरुड़ ने कहा—

गरुड़—बतादे माता! प्रारब्ध क्या है? और कौन है? मैं उससे लड़ूंगा, लड़ कर अपना जीवन गंवा दूंगा, पर दासता का दुख न सहूंगा।

माता—बेटा! तेरे हृदय के भावों को मैं न जानूंगी तो और कौन जान सकेगा? हाय! आज तुम्हारे पिता यहां होते तो यह दुख देखना नसीब न होता।

गरुड़—(मां के गले में बाहें डाल कर) माता न रो! जब तक मैं जीवित हूं मैं तुम्हें रोने न दूंगा, पिता जी चले गये तो क्या? आखिर सब के पिता सदैव साथ ही तो नहीं रहते। मुझे केवल इतना बतादे, हमारी दासता का अन्त किस प्रकार हो सकता है?

माता—(आंखें पोंछ कर) पुत्र! तेरे पिता देव लोक के वासी थे, उन्होंने हम दो स्त्रियों से विवाह किया। कद्रु नागों की मां है, मैंने तुम्हें और अरुण को जन्म दिया। मेरी नासमझी से गर्भ में कुपथ्य के कारण अरुण की टांगों में विकार हो गया, वह सर्वगुण-सम्पन्न होने पर भी बिना सहायता के चल फिर नहीं सकता। इसलिये गृह का आश्रय तुम्हीं हो।

गरुड़—मेरे जीवन का क्या, जब तुम्हीं शोकातुर हो? माता! मैं तो अपने आप को तब जीवित समझूंगा, जब तुम स्वतन्त्र होगी।

माता—स्वतन्त्रता की देवी बहुत बड़ा बलिदान मांगती है।

गरुड़—मैं प्रत्येक बलिदान के लिये तैयार हूँ, कुछ कहिये तो।

मां—तुम्हारे पिता जानते थे कि कद्रु के पुत्र और तुम एक स्थान पर नहीं रह सकोगे, इसलिये देव लोक से जाने से पहिले और स्यात मत्स्य जी की चेतावनी को ध्यान में रख कर, उन्होंने हमें कश्पियन सागर के तीर पर भेज दिया, यहां के लोगों ने बड़े हर्ष से हमारा स्वागत किया। हम शान्ति से यहां जीवन व्यतीत करते रहे, पर तुम्हारे पिता के जाने के पश्चात कद्रु ने धोखे और फरेब से इस स्थान पर आकर हम से सब कुछ छीन लिया और अपनी सन्तान की बहुलता के भरोसे हम लोगों पर प्रत्येक प्रकार के अत्याचार आरम्भ कर दिये। तुम अकेले उन सब के मुकाबले में क्या कर सकते हो?

गरुड़—अपना जीवन तो दे सकता हूं।

माता—जीवन का नाश करना बुद्धिमत्ता नहीं।

गरुड़—तो आप मुझे क्या करने की आज्ञा देती हैं?

माता—हमारी दासता की शृंखला को तोड़ने के लिये एक शर्त है। तुम्हारे भ्राता हमें दासता से मुक्त करने के लिये एक वस्तु मांगते हैं, और वह है 'अमृत'—अमृत इस जगत में देव लोक के वासियों के पास है, (कुछ सोचते हुये) इस समय यदि कोई हमें दासता से छुड़ा सकता है, तो केवल देव लोक की रहने वाली जाति है, जिसने तुम्हारे पिता को जन्म दिया था।

गरुड़—यह जाति कहां रहती है? देव लोक कहां है? मैं

अमृत को लाऊंगा, जहां से भी वह मिलेगा उसे लाकर रहूंगा।

माता—देव लोक यहां से दूर, अति दूर, उत्तर की ओर है। वहां पहुंचना बहुत कठिन है, उसे उत्तर कुरु भी कहते हैं, वहां जाने के लिये अनेक नदियों, सागरों, तथा बनों को लांघना पड़ता है। तुम वहां कहां जा सकोगे और फिर देवता लोग तुम्हें अमृत कब देने लगे ?

गरुड़—मैं देव लोक की खोज में जीवन न्यौछावर कर दूंगा। उसे ढूंढते हुये मिट्टी में मिल जाऊंगा। पर अब एक दिन के लिये भी दासता का जीवन पालन नहीं करूंगा। माता ! मुझे आशीर्वाद दो। केवल तुम्हारे आशीर्वाद की आवश्यकता है, उसके मिल जाने पर समुद्र को फांदना और नदियों को पाटना कठिन नहीं, अमृत को लाना तो बात ही क्या है।

माता—बेटा तुम जानते हो मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। यदि जाना ही है तो जाओ। मेरे नेत्र तुम्हारे लौटने का मार्ग देखेंगे।

: २ :

"युवक ! हम कई दिन से देख रहे हैं, दस्यु लोगों के विरुद्ध तुम सदा अग्रणीय रहते हो, भयावह स्थानों पर हमने तुम्हें दूसरों को पीछे छोड़ते हुये देखा है। दस्यु लोगों को पराजित करने के लिये तुमने कभी अपने जीवन की ओर ध्यान नहीं दिया। पर अभी तक तुमने हमें अपना परिचय नहीं दिया"—एक नवयुवक को सम्बोधन करके देव सेना के सेनापति इन्द्र ने कहा।

युवक—भगवन्! मुझे गरुड़ कहते हैं। मैं कश्यप वंश से सम्बन्ध रखता हूँ।

इन्द्र—(विस्मित होकर) "गरुड़"! कश्यप वंश से! अरे क्या तुम वही तो नहीं, जिसके जन्म के लिये महर्षि कश्यपने यज्ञ किया था तो हमें आवाहन किया था (भली प्रकार देखकर) तुम्हारे जन्म पर हमने तुम्हें आशीर्वाद दिया था। माता की गोद से लेकर तुम्हारे मुख में अमृत विन्दु हमने ही गिराये थे।

गरुड़ के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी।

इन्द्र—(बात को जारी रखते हुये) आओ बेटा! गले मिलें। इससे प्रथम तुमने हमें क्यों न बताया? माता के पास से कब आये? वह सुरक्षित तो हैं? पिता जी का कोई पता चला?

यह कह कर उन्होंने जोश से गरुड़ को हृदय से लगा लिया और उसके सिर के बालों को सूंघते हुये कहा, "अब तुम युवा हो गये हो, मैंने जिस दिन तुम्हें प्रथम बार देखा था उसी दिन से सोच रहा था कि यह कौन है? कश्यप जी की मूर्ति तुम्हारे मुख पर अंकित है, पर समझ में नहीं आता था कि तुम्हें कहां देखा है।"

इन्द्र प्रश्न पर प्रश्न किये जा रहे थे, और उन में से किसी का भी उत्तर गरुड़ से बन नहीं पड़ा था। आखिर साहस करके उसने कहा:—

गरुड़—माता ने देव लोक का पता दिया था, उसे ढूंढते हुये मैंने कितने बनों को पार किया, कितनी नदियों को लांघा,

उनकी गणना नहीं कर सकता, महीनों तक उत्तर की ओर चलते हुये जब क्षीर सागर के तीर पर पहुंचा, तो आप मेरी निराशा का अनुमान कर सकते हैं जब मुझे ज्ञात हुआ कि देव लोक का अधिकांश समुद्र के नीचे चला गया है, और वहां की रहने वाली जाति किसी और दिशा को प्रस्थान कर गई है !

इन्द्र—देव लोक को जाने की आवश्यकता तुम्हें क्यों हुई ?

गरुड़—पिता जी के जाने के पश्चात माता जी को दास बना लिया गया ! धोखे और जाल से उन्हें दासता के बंधनों में बांध लिया गया।

इन्द्र—(विस्मित होकर) देवी वनिता दासी बन गई ! किसने उसे दासी बनाया ?

गरुड़—अपने ही अंगों के विरुद्ध मुख खोलना कठिन है, परन्तु आपके प्रश्न का उत्तर देना ही है। नाग माता कद्रु ने अपने पुत्रों की बढ़ी हुई संख्या के भरोसे माता जी को दासी बना कर हमें जो दुःख दिये हैं, उनका वर्णन सुगम नहीं। उनसे दुखी होकर मैंने यह जानने का यत्न किया कि किस प्रकार उस दासता से मुक्ति हो सकती है ? तो कहा गया, कि नाग हमें इस शर्त पर स्वतन्त्रता प्रदान कर सकते हैं कि हम उन्हें अमृत ला दें।

इन्द्र—अमृत ? नाग उसे पान करके इतने शक्तिशाली हो जायेंगे कि उन्हें संभालना कठिन हो जायगा।

गरुड़—इसी कारण माता ने कहा था कि दासता के बंधनों का कटना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। उनका कथन था

कि हमें इस नरक से निकालने में यदि कोई समर्थ है, तो या तो स्वयं पिताजी, या उनकी जाति के लोग। वह कहती थीं कि अमृत का बनाना देव लोगों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता, और वह उसका रहस्य किसी को नहीं देते।

इन्द्र—तो ?

गरुड़—मैं यह प्रतिज्ञा करके घर से निकला हूं कि या तो माता को दासता से मुक्त करवाऊँगा या अमृत की खोज में जीवन की आहुति दे दूंगा।

इन्द्र—(गम्भीरता से) अभी तुम युवक हो, इस प्रतिज्ञा के सब अंगों पर तुमने विचार नहीं किया। अमृत का पाना कठिन तो है ही, पर उसे कुपात्र के हाथों में सौंपना पाप से कम नहीं।

गरुड़—अब तो जो होना था, हो चुका।

इन्द्र—परमात्मा तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ति में सहायक हों !

: ३ :

"गरुड़! हम सहर्ष तुम्हें यह शुभ समाचार सुनाते हैं कि देव लोगों की महासभा ने यह आज्ञा दे दी है, कि हम तुम्हें अमृत का एक कलश दे दें, इसे लेकर तुम सफल मनोरथ हो सकते हो।"

गरुड़—मैं इस कृपा के लिये सभा का कृतज्ञ हूं। पर जानता हूं कि यह सब कुछ आप के यत्न का ही फल है।

इन्द्र—तुम ने देव लोगों की जो सेवा की है, उसे दृष्टि में रखते हुये यह कलश कुछ भी नहीं। परन्तु सभा को यह चिन्ता है कि उनकी दी हुई वस्तु का दुष्प्रयोग न हो।

गरुड़—सभा की चिन्ता ठीक है, परन्तु इसमें मैं कुछ कर सकता हूं, यह कहना सुगम नहीं।

इन्द्र—इस पर हम ने विचार किया है, और इस सम्बन्ध में उचित प्रबन्ध कर दिये गये हैं। परन्तु एक और विचार दुःख दे रहा है।

गरुड़—मैं भगवान् की किस २ कृपा के लिये धन्यवाद करूं।

इन्द्र—धन्यवाद की आवश्यकता नहीं। कश्यप जी के पुत्र होते हुये तुम हमें अपने पुत्रों से अधिक प्रिय हो। पर विचार यह है कि यदि अमृत लेकर भी नागों ने अपना वचन न पूरा किया तो क्या होगा ?

गरुड़—(सोचते हुये) ऐसा हो सकता है।

इन्द्र—इस कारण अपना विचार यह है कि अमृत का कलश उन्हें उसी समय सौंपा जाय जब वह तुम्हारे देश को छोड़ जांय, इससे पहिले नहीं। और यह तभी हो सकता है जब तुम्हारी पीठ पर कोई शक्तिशाली सेना रहे।

गरुड़—भगवान् का विचार ठीक है।

इन्द्र—हम इस विषय पर और सोचेंगे। तुम अब प्रस्थान की तैयारी करो। जाने से कुछ दिन पहिले हमें अपने मनोभावों से सूचित कर देना।

: ४ :

नाग सभा में सन्नाटा छा गया जब यह ज्ञात हुआ कि अमृत कलश गुम हो गया। अमृत प्राप्ति के लिये नागों ने देव दूत

की उस शर्त को मान लिया था, कि अमृत लेने से पहिले वह अपनी सौतेली माता और उसकी सन्तान को स्वतन्त्रता देकर उनके देश से अपनी समस्त सेना वापिस बुला लेंगे। जब अमृत का कलश उन्हें मिला, तो अमृत पान की विधि को पूर्ण करने से पहिले उसे सुरक्षित गृह में ताला लगा कर चारों ओर पहरा बिठा दिया गया, जिस पर विश्वस्त अफसर नियुक्त थे। परन्तु जब वह शुभ घड़ी और शुभ दिन आया, जिसके लिये नाग जाति प्रतीक्षा कर रही थी और जिसके लिये इतना समारोह हुआ था, तो ताला खोलने पर पता लगा कि कमरे में कलश का कोई पता नहीं। कमरे के भीतर और बाहर ध्यानपूर्वक सतर्कता से अन्वेषण किया गया, एक छोड़ अनेक बार देखा गया, उसकी भूमि को ठकोरा गया, परन्तु न हीं भूमि में, न ही दीवालों में, न छत और किवाड़ों में कोई स्थान दिखाई दिया, जिससे वह अमूल्य वस्तु बाहर निकाली गई हो। इधर, उधर, यहां, वहां मनुष्य तो क्या किसी पशु के भी पद-चिन्ह न थे, जो यह पता देते कि अमृत को ले जाने वाला कौन था? और वह किधर गया? सन्देह पहरेदारों पर पड़ता था, पर वह बेहद विश्वासपात्र थे, इसलिये किसी की बुद्धि काम न देती थी। इस समस्या का हल प्रत्येक अपनी २ समझ के अनुसार करता था, परन्तु बुद्धि की कसौटी पर लगते ही वह हास्यास्पद जंचने लगता था। इसी बीच में किसी ने कहा, 'मुझे विश्वास है हमारे साथ धोखा किया गया। वास्तव में अमृत कलश कोई वस्तु न थी, आंखों को धोखा देने के लिये कोई जादू बनाया गया था, जो बन्द कमरे

में रखने के पश्चात् पिघल कर वायु में उड़ गया।" यह एक सूझ थी, जो घटाटोप अन्धकार में प्रकाश की किरण प्रमाणित हुई। जिसे पाकर प्रत्येक के मुख से निकला "धोखा, फरेब इसका दण्ड दिया जाना चाहिये।"

: ५ :

अरुण और गरुड़ कठिनता से गृह और राष्ट्र का प्रबन्ध कर पाये थे, कि नाग सेना उन पर चढ़ दौड़ी, और स्यात उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करने में सफल हो जाती, यदि उसी समय देव सेना इन्द्र के नेतृत्व में उनकी सहायता को न पहुंचती। इन्द्र अनुभवी और चतुर सेनापति थे, वह जानते थे कि नाग अपने उद्देश्य की पूर्ति में निष्फल होकर यही निश्चय करेंगे कि अमृत के गुम होने की जिम्मेदारी उसी की है जो उसे लेकर आया था, और वह उसे नष्ट करने का यत्न करेंगे। इसलिये वह इस समय के लिये तैयार थे। परिणाम यह हुआ कि नाग सेना को एक ही समय में दो शत्रुओं से युद्ध करना पड़ा। गरुड़ यद्यपि नवयुवक था, किन्तु देव सेना में कई मास रह कर, देव सेनापतियों के चरणों में बैठकर, एक भारी योद्धा बन चुका था। उधर इन्द्र के नाम का डंका चारों ओर बज रहा था। नाग सेना इन दोनों शूरवीरों के बीच चक्की के पाट में पड़े दाने की भांति पिस गई। कई दिन युद्ध हुआ, जिसमें बहुत से नाग हताहत हुये। शेष ने बुद्धिमत्ता यही समझी कि कश्यप सागर से पार उतर कर किसी और देश को अपना घर बनायें।

———

महर्षि कश्यप और नील नाग

उत्तर गिरि के दर्रों को पार करके हिमालय की तराई में एक नदी के तट पर भगवान् मनु ने अपनी कुटिया बना ली थी। विश्वमित्र जी उनसे आगे चल कर एक रमणीक स्थान में अपना आश्रम बनाने में सफल हुये, जिसे उन्होंने 'सिद्धाश्रम' का नाम दिया। भरद्वाज जी ने वर्त्तमान प्रयाग के स्थान पर अक्षयवट की छाया में अपना आश्रम स्थापित किया। इस प्रकार उन्होंने प्रारम्भिक संस्थापकों (pioneers & settlers) की भांति इस देश के कई स्थानों पर, जिसे उन्होंने ब्रह्मावर्त्त के नाम से पुकारा, ओ३म् का झंडा लहराते हुये देव लोगों के नाम पर अधिकार जमा लिया।

प्रातः के हवन यज्ञ के पश्चात् मनु जी वन में उच्च स्वर से ओ३म् का उच्चारण करते हुये टहल रहे थे। पर्वत के ऊपर से सरयू नदी का स्वच्छ जल प्रवाहित हो रहा था, और उसके तीर पर वह आज पिछले दिनों से अधिक काल तक घूमते रहे थे, इसलिये लौटने की सोच ही रहे थे कि पीछे पद ध्वनि सुनाई दी। मुड़ कर देखा तो कुछ दूरी पर एक लम्बे क़द का मनुष्य आ रहा था। उसका शरीर उसके क़द की अपेक्षा बहुत दुर्बल था, आंखें भीतर को धंसी हुई थीं, मुख की हड्डियां ऊपर को उभर रही थीं।

मनु जी उसे ध्यानपूर्वक देखते रहे। जब निकट आकर उसने प्रणाम किया तो बोले—

मनु—आप कहां से आ रहे हैं और कहां जायेंगे ?

आगन्तुक—बहुत दूर से आ रहा हूं। मेरे पिता दीर्घकाल से गुम हैं, उनकी खोज कर रहा हूँ।

मनु—इन शून्य वनों में आप अपने पिता को ढूंढ़ रहे हैं ? आपका शुभ नाम ?

आगन्तुक—मुझे नील कहते हैं, मैं नाग वंश से सम्बन्ध रखता हूं।

मनु—नाग वंश ? आपके पिता का परिचय ?

नील—पिता जी को कश्यप कहते हैं, वह देव लोक के वासी थे।

मनु—देव लोक का इस देश से सम्बन्ध ?

नील—यदि मेरी दृष्टि भूल नहीं करती तो आपका शरीर ही उस सम्बन्ध का पता देता है। देव लोक के वासी जहां पर भी हों, पहचाने जाते हैं।

मनु खिलखिला कर हंसे, परन्तु हंसी को रोक कर बोले—"क्या देव लोक ने हमारे शरीर पर छाप लगा दी है, जिसे हम छिपाने का यत्न करने पर भी नहीं छिपा सकते ?

नील—मेरा विचार ऐसा ही है। पर इससे क्या ? आपके दर्शन करके मेरे हृदय में एक तरंग सी उठ रही है। क्या मेरा उद्देश्य पूर्ण होगा ?

मनु—यह कहना कठिन है कि हम आपका उद्देश्य पूर्ण कर सकते हैं या नहीं। परन्तु हमारे दो चार साथी हमारे साथ हैं, तुम चाहो तो हम तुम्हें उनसे मिला सकते हैं।

वृक्षों के झुण्ड में से हवन यज्ञ का धूम्र श्वेत रेखा के रूप में ऊपर को उठ रहा था। यज्ञ शाला के आस पास केले के वृक्ष लगे थे। और यज्ञ से निवट कर वशिष्ठ, कश्यप, जमदग्नि और गौतम भोज पत्र पर लिखे हुये वेद मन्त्रों को वांच रहे थे जब मनु जी नील नाग को साथ लिये हुये वहां पहुंच गये। तब मनुजी ने हंसते हुये कहा—"यह हैं हमारे साथी। कहो किसी को पहचानते हो ?"

अवस्था अद्भुत हो गई, क्योंकि नील अभी बालक ही थे जब कश्यप जी उन्हें छोड़कर देश से गये थे। अब एक ओर वह युवा हो चुके थे, दूसरी ओर दीर्घ काल से इधर से उधर और उधर से इधर घूमते हुये कश्यप जी के सिर पर के जटाजूट और मुँह पर लम्बी दाढ़ी मूँछ सब श्वेत हो चले थे। साथ ही अन्य ऋषियों की शक्ल भी अधिकतर वही थी जो कश्यप जी की। कुछ काल तक सारे ऋषि नील की ओर और नील एक ऋषि से दूसरे ऋषि की ओर ध्यानपूर्वक देखते रहे, फिर कश्यप जी ने स्वयं निस्तब्धता को भंग करते हुए कहा—"नवयुवक ! तुम किसे देखने और पहचानने का यत्न कर रहे हो ?"

नील—मैं सारे महात्माओं के चरणों में सिर झुका कर अपने पिता महर्षि कश्यप जी को पहचान रहा हूं।

कश्यप—और उन्हें पहचान नहीं सकते ?

नील—(मुस्करा कर) सन्देह में पड़ रहा हूं।

कश्यप—आज से पहिले भी किसी पुरुष पर पिता होने का सन्देह हुआ है या नहीं ?

नील शान्तिपूर्वक उनके मुख की ओर निहारते रहे, और फिर बोले— "पिताजी अधिक समय तक इस वेसमझ का मजाक न उड़ाइये। माता कद्रु ने आपका जो चित्र दिया था, उसमें लम्बे केश सम्मिलित कर दिये जांय तो आपका पुत्र धोखे में नहीं रह सकता"।

यह कह कर वह उनके चरणों में झुका, तो कश्यप जी ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया। कुछ काल तक पिता पुत्र चुपचाप खड़े रहे। उस समय पुत्र के नेत्रों से अश्रु प्रवाह हो रहा था, और पिता के नेत्र प्रेम जल छिड़क रहे थे। आखिर कश्यप जी ने कहा "विस्मित हूं कि तुम इस देश में, जहां अभी तक मनुष्य का पांव पड़ा प्रतीत नहीं होता, कैसे आ गये।"

नील—परमात्मा की इच्छा हुई, और उसने मेरे पांवों का रुख इस ओर कर दिया। धन्यवाद है कि सफलता प्राप्त हुई।

कश्यप जी ने उसके पांवों की ओर दृष्टिपात किया, तो वह शल्य हो रहे थे। स्थान २ पर कांटों के घावों से रक्त प्रवाहित होने के चिन्ह थे। टांगों की दशा बता रही थी, कि उन्हें निर्दयतापूर्वक उपयोग में लाया गया है, और दुर्बल होता हुआ शरीर पता दे रहा था, कि उसे कठिन तपस्या में से निकलना पड़ा है। इसलिये उन्होंने उसे कहा—"बेटा विश्राम करलो, फिर तुम्हारी कथा सुनेंगे"।

——:——

"मेरी कथा दुख की कथा ही नहीं, लज्जा की वार्त्ता भी है, क्योंकि यह भाई २ के वैमनस्य की कथा है (गरुड़ की कथा सुना कर) हमने अपने भाइयों से धोखा किया था, हमारे साथ उसी प्रकार धोखा किया गया। हमें आज तक यह ज्ञात नहीं, कि वह किसने किया, पर जो हुआ हमें हमारे किये का दण्ड मिल गया"—दुखी दिल के साथ नील नाग ने कहा।

कश्यप—तुमने भाइयों को दुखी किया, अपने पिता की स्त्री को अपनी माता न समझा, अपनों से शत्रुता मोल ली, उसके बदले में तुम्हें दुख न होता तो क्या होता?

नील—यदि हम भाइयों से न बिगाड़ते तो आज हमारी यह दशा न होती। सारे भाई एक प्राण होते तो जगत की कोई शक्ति हमारा सामना नहीं कर सकती थी। अब घर से बेघर हुये फिर रहे हैं, पर कहीं पर भी कोई आश्रय नहीं मिलता।

कश्यप—(शोक पूर्वक) तुमने यहां आकर हमारी शान्ति को भंग कर दिया। इतने दुख और आपत्तियां सहन करने के पश्चात हम इस स्थान पर आकर शान्त हुये थे, पर तुमने यहां पर भी हमें सुखी न रहने दिया है। कहो अब तुम्हारे भाई कहां हैं?

नील—इस स्थान से दूर, बहुत दूर, पर्वतों में हमने एक देश देखा है और उसे अपने निवास के लिये चुन लिया है। वह चारों ओर बड़े २ पर्वतों से सुरक्षित है। जल सरोवर स्थान २ पर हैं। जिधर देखो हरियावल ही हरियावल दीख पड़ती है। जिस ओर ध्यान करो दृष्टि वहीं की हो रहती है। प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने

उसे रचकर इस जगत में देवलोक का चित्र खेंचने का यत्न किया है। परन्तु हमारा दुर्भाग्य वहां भी हमारे साथ गया।

कश्यप—क्यों, वहां तुम्हें क्या दुख है ?

नील—ऐसा प्रतीत होता है कि वह देश बहुत थोड़ा समय हुआ जल से ऊपर उठा है। इस कारण वहां पर जल जन्तु अधिक हैं, विशेषकर वह महान् जन्तु जिन्हें लोग "जलोद्भव" कहते हैं। वह वहां पर किसी अन्य पुरुष, स्त्री, जीव को रहने नहीं देते। रात्रि को जल से बाहर निकल कर विचरते हैं, और वहां के वासियों को काट कर मार देते हैं। उनका पीछा किया जाय तो जल में घुस कर सुरक्षित हो जाते हैं।

कश्यप—तो फिर तुम्हारा क्या विचार है ?

नील—हमें आपकी सहायता की आवश्यकता है। आप और देवलोक से आये हुये इन महात्माओं के अतिरिक्त और कोई जगत के लोगों को जलोद्भव राक्षसों से बचाने में समर्थ नहीं।

कश्यप—नील ! भाइयों से बुरा व्यवहार करके, माता को वन्दीगृह में डालकर, और फिर घर से बेघर होकर, तुम अपने पिता की शरण आये हो, इस कारण तुम किसी सहायता के पात्र नहीं। परन्तु हमने तुम्हें जन्म दिया है, इस कारण तुम्हारी दुख कथा सुनकर तुम्हारी ओर से मुख मोड़ते भी नहीं बनता। अच्छा, हम भगवान् मनु की सेवा में सारी स्थिति रखेंगे, फिर जैसी वह आज्ञा देंगे किया जाएगा।

कश्यप मीर

काश्मीर की घाटी में, पीर पन्तसाल के पर्वतों के पूर्वी भाग में, दर्रा वानिहाल से पश्चिम की ओर, ब्रह्म शिखर पर्वत के हिमाच्छादित तीन शिखर स्थित हैं। उनमें उच्चतम शिखर सागर तल से १५२२३ फिट ऊँचा है। राजतरंगिणी के लेखक कलहन पण्डित ने इसे "नौबन्धन तीर्थ" कहा है, और इसी नाम से यह आजकल पुकारा जाता है। काश्मीरी लोगों का विचार है कि भगवान् मनु इस चोटी पर अपनी नाव से उतरे थे। यह ठीक है या नहीं, इस पर बहस करना हमारा काम नहीं, पर यह ठीक है कि काश्मीर देश के साथ हमारी कथा का सम्बन्ध इस पर्वत श्रेष्ठ से है। क्योंकि मनु, कश्यप, और अन्य ऋषि नील नाग के नेतृत्व में इसी शिखर से नीचे उतर कर उस सरोवर के तीर पर पहुंचे थे, जिसे लोग "कौंसर नाग" के नाम से पुकारते हैं और जिसे नीलमत पुराण और अन्य पुरानी पुस्तकों में "कर्म सरस" या "कर्मसार" कहा गया है। जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं, उस समय यह सरोवर अपने वर्तमान विस्तार (जो दो मील के लगभग है) तक सीमित न था, और ऋषि लोग यह देख कर विस्मित रह गये कि उत्तरगिरि, पीरपन्तसाल और अन्य पर्वतों की दिवालों के भीतर जिधर दृष्टि जाती थी, जल के अतिरिक्त कुछ दिखाई न देता था, जो सीप में पड़े मोती की भांति

चमक रहा था। उसकी ओर संकेत करके नील नाग ने बताया कि इस स्थान से निकल कर जलोद्भव पर्वत वासियों को दुखित करते हैं।

ऋषि लोग सरोवर की प्रदक्षिणा करते हुए जा रहे थे कि सामने एक झोंपड़ी दीख पड़ी। नील नाग ने उसकी ओर इंगित करके कहा "इस ओर हम लोगों ने अपनी बस्तियां बसाने का यत्न किया है। वह सामने मेरी कुटिया है, विराजिये।"

कश्यप जी सरोवर के जल की ओर निहार रहे थे और उन्होंने एक स्थान पर ज़ोर से अपना त्रिशूल गाड़ते हुए कहा "इस वितस्ती *स्थान से वितस्ता चल पड़ेगी।"

त्रिशूल का गड़ना था, कि एक पत्थर पृथ्वी में धंसता हुआ दृष्टि-गोचर हुआ, और अल्पकाल में सरोवर का जल भारी कोलाहल के साथ उस गुफा में गिर कर नीचे को प्रवाहित होने लगा, जिसे त्रिशूल के पत्थर पर दवाव ने उत्पन्न कर दिया था। यह नदी आज तक वितस्ता के नाम से प्रसिद्ध है, और कश्यपमीर की प्रसिद्ध नदी है। आगे चल कर इसने जेहलम का नाम धारण किया है।

ऋषि लोग जल का मार्ग देखते हुए आगे चले, तो कई मील की दूरी पर एक भारी खड्ड में कुछ अद्भुत जीवों का एक समूह अपना मुख ऊँचे वृक्षों तक पहुँचाये उनके पत्ते खेंच २ कर ग्रास बना रहा था।

---

*अंगूठे और छिंगले के मध्य का फासला—एक बालिश्त।

उन्हें देखते हुए कश्यप जी ने मनु जी से कहा "देखिये इनके पांव कितने सख्त हैं। सिर कितने भारी हैं। उनमें से दांत बाहर निकल रहे हैं। इनके क़द कितने ऊँचे हैं।" शब्द कठिनता से उनकी जिह्वा से निकले थे, कि मेघ गर्जन का सा शब्द हुआ, जिसे सुन कर मनु जी ने कहा "यह तो मेघ की सी गर्जना है, निःसन्देह यह जीव वाराह❀ हैं। यह सुन कर अन्य ऋषियों ने कहा—"यह महान् खड्ड 'वाराह मूला' है।"

वाराह मूला से ऊपर के मैदान को उन्होंने "वाराह क्षेत्र" का नाम दिया। यहां पहुंच कर वितस्ता की छोटी सी नदी एक महानद का रूप धारण करके वाराहमूला की गुफा में से होकर पर्वतों से बाहर निकल आई। फिर संगम के स्थान पर एक और महानद से मिल गई, जिसे आजकल उत्तरी गंगा कहा जाता है।

उस देश का भ्रमण करते हुए ऋषि लोगों को ज्ञात हुआ, कि उन पर्वतों से ऊपर एक और महानद प्राचीन सागर के जल को नीचे मैदानों में लिये जा रहा है। यह महानद इतना बड़ा था कि ऋषि लोगों ने उसे सिन्धु कह कर पुकारा, जो कुभ (काबुल), श्वेत (स्वात) और अन्य कई नदियों के साथ मिल कर सचमुच सिन्धु ही बन गया। इन नदियों को काश्मीर के पर्वतों से बाहर निकलते देख कर ऋषि लोग लौटे, तो नील नाग ने उन्हें यह शुभ समाचार दिया कि "सरोवर का जल अधिकांश सीमा तक

❀ आज कल यह शब्द सूअर के अर्थों में वर्ता जाता है निरुक्त-कार ने निघण्टु में इसका अर्थ मेघ भी किया है।

उतर गया। जलोद्भव राक्षस भी वहां दीख नहीं पड़ते। जान पड़ता है कि वह थोड़े जल में नहीं रह सकते थे, इस कारण वितस्ता के जल के साथ ही सागर की ओर चल दिये हैं।"

अल्प काल में ही वहां चारों ओर शुष्क खेत दिखाई देने लगे। कश्यप जी ने पहिले कार्यक्रम से लाभ उठाते हुए दूर २ तक कूलें खुदवा दीं, जिनका जल खेती के काम में आने लगा। उस समय नील नाग को सम्बोधन करके उन्होंने कहा "नील! यह पृथ्वी जिसका स्वामी उस पृथ्वीपति परमात्मा के अतिरिक्त कोई नहीं जो उसका आधार मात्र है, तुम्हें मिल गई। इन पर्वतों के आदि वासियों के साथ शांति से रहते हुए इस सुन्दर प्रदेश की उपज से लाभ उठाओ। यह कूलें (नहरें) जो स्थान २ पर बनवा दी गई हैं, एक ओर जल को सुखायेंगी, दूसरी ओर पृथ्वी को सींचने का काम देंगी। यह स्वर्ग से अवतीर्ण देवियों की भांति यहां के वासियों को सुख देंगी...............

नील—भगवन! क्या हमें इन पर्वतों के रहने वाले नाटे और काले कलूटे पहाड़ियों के साथ इकट्ठे रहना पड़ेगा?

उसके शब्दों में न जाने क्या था, कि कश्यप जी के हृदय में क्रोध की ज्वाला धधक उठी, और उन्होंने कहा "मनुष्यों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हो! अरे अभी तुम्हारा उच्च-जातीय होने का अभिमान नहीं टूटा? स्मरण रक्खो! यदि तुम मनुष्यों के साथ नहीं रहोगे, तो तुम्हें पिशाचों के साथ रहना होगा!"

नील घबरा कर "क्षमा ! पिता जी क्षमा !! भूल हुई, क्षमा कर दीजिये" यह कह कर उनके चरणों में गिर गया।

ऋषि का क्रोध शांत हो गया, और उसने पुत्र को चरणों से उठाते हुए कहा—"यदि तुम किसी मनुष्य, पशु पक्षी, काले पीले, श्वेत को घृणा की दृष्टि से न देखते हुए सब में ब्रह्म का रूप देखते हुए शांति का जीवन व्यतीत करोगे तो यह पर्वत देवताओं और ऋषि महर्षियों की तपस्या का स्थान बनेंगे। लोग दूर २ से इनकी यात्रा को आयेंगे, यह देश इस पृथ्वीतल पर देव लोक का प्रतिबिम्ब रहेगा। यही आशीर्वाद है जो हम दे सकते हैं।"

❀ देखो (१) नीलमत पुराण, (२) कलहण पंडित की राजतरंगिणी, (३) चीनी यात्री ह्यू नसांग का भ्रमण वृत्तान्त (Si-yu-ki translated by Beal pages 149, 150) (४) आइने अकबरी, (५) बर्नियर्स ट्रैवल्स (Bernier's Travels) (६) स्टाइन साहिब का 'जुगराफिया प्राचीन काश्मीर' (Stine's Geography of Ancient Kashmir)

नया समाचार

सती सरोवर के आस पास नई निकली हुई भूमि में शाली की कृषि हो रही थी। नाग लोग और उनकी अध्यक्षता में इधर उधर के पहाड़ी घुटनों तक जल में उतर कर धान के पौधों को भूमि में गाड़ रहे थे। मनु सायंकाल के समय सरोवर के तट पर अपने आप में खोये हुये बैठे थे। ऊंची २ पहाड़ियों की छाया सरोवर के जल में प्रतिविम्बित हो रही थी, और उनके पीछे अस्ताचल को जाते हुये सूर्य की लालिमा जल पर अपना प्रतिविम्ब छोड़ रही थी। इन पर्वतों से परे कैलाश और उनसे परे हिमाद्रि और नांगा पर्वत पर श्वेत वर्फ जम रही थी, और उनके बीचों बीच कराकुरम इत्यादि की अगम्य ज्योतियां (दर्रों) में से होकर मनुष्य पामीर के उपत्यकाओं से नाता जोड़ने का यत्न कर रहे थे। मनु जी की दृष्टि उस दृश्य पर पड़ कर उन्हें वेसुधी की अवस्था में ले जा रही थी और उनके सन्मुख देव लोक का वह दृश्य फिर रहा था जब वह और श्रद्धा एक सायंकाल को उसी भांति एक सरोवर के तट पर बैठे थे। श्रद्धा का कोमल और श्वेत हाथ उनके हाथ में था और वह कह रहे थे ········ हां जो कुछ भी कह रहे थे ········ उसे स्मरण करके उनके हृदय में एक

हूक सी उठी, और वह हृदय थाम कर रह गये। उस समय उनके भीतर से आवाज़ आई "क्या श्रद्धा जीवित है? यदि जीवित है तो क्या वह अभी तक मेरी स्मृति को नहीं भूली?" इस आवाज़ को सुनकर उन्होंने इधर उधर देखा, क्योंकि उनके कर्णों को ज्ञात हुआ कि कोई अन्य व्यक्ति निकट खड़ा उनसे यह पूछ रहा है। परन्तु जब आस पास किसी का भी रूप दिखाई न दिया तो मुस्कराते हुये उन्होंने कहा "मनु! आज तुझे क्या हो गया है?" यह उत्तर देने के पश्चात् वह फिर उसी स्वर्गीय दृश्य में खो गये जो उनके सन्मुख था। इसी समाधि अवस्था में उन्होंने देखा कि सामने आकाश में कोई स्त्री उड़ी जा रही है और उनकी ओर संकेत करके कह रही है "यही है न मनु जिसके लिये तू स्वयं को बलि कर रही है, यही है न जो अपनी जान बचाकर देवलोक से भाग आया है?" फिर आवाज़ आई, "वह कुछ भी हों वह श्रद्धा के हैं और उसी के रहेंगे। जगत उन्हें कुछ कहे, वह श्रद्धा के देवता हैं, और वह उनकी ही मूर्ति की उपासक रहेगी।" इसके आगे और कुछ सुनना असम्भव था क्योंकि शब्द दूर से आ रहे थे। मनु जी की खुली आंखें और भी विस्तृत हो गईं। उन्होंने उठ कर चारों ओर खोजना प्रारम्भ किया कि वार्त्तालाप करने वालों की मूर्ति दृष्टिगोचर हो। परन्तु वहां कोई होता तो दीख पड़ता। तब उन्होंने कहा "स्वप्न! जाग्रत स्वप्न।"

जिस दिन से उन्होंने नील नाग से यह सुन पाया था कि देव लोक नष्ट हो गया, परन्तु उसके वासियों की एक भारी संख्या बच

निकली है और वह अपने लिये सिर छिपाने को स्थान ढूंढ रहे हैं, हां हा जिस दिन से उन्होंने इस सूचना को सुना था, उनके हृदय के भीतर नई उमंगें पैदा हो रहीं थीं, और वह चाहते थे कि जैसे भी बने इस विशाल संसार को छान कर देव लोगों और श्रद्धा का पता लगायें। यह इच्छा उनके हृदय की तहों में उत्पन्न हो कर उनके मस्तिष्क में अद्भुत कल्पना भर रही थी। वह बैठते थे तो श्रद्धा की मूर्ति दृष्टि के सन्मुख आती थी, सोते थे तो देव लोक के लोगों के छकड़ों और बहलियों की खड़खड़ाहट सुनते थे। जब से मत्स्य जी की कृपा से वह साइबेरिया की नदियों और उनके आगे अनेक पर्वत श्रेणियों में से होते हुये उत्तर गिरि के पर्वत पर आकर ठहरे थे, कई बार यह विचार उनके मन में आया था कि स्यात इन्हीं क्षेत्रों को बसाने के लिये उन्हें प्रकृति माता ने इधर भेजा है। कश्यप जी ने सती सरोवर की घाटी में नई भूमि पैदा करके अपनी सन्तान के एक भाग को यहां बसा दिया था। परन्तु मनु देव जाति के महा।पितर थे और वह उस सारी जाति के लिये नई भूमि खोजना चाहते थे, और उस जाति के साथ वह श्रद्धा के दर्शन करना चाहते थे। यह विचार कई बार उनकी दृष्टि के सामने काल्पनिक मूर्तियां उपस्थित कर देता था। आज का जागृत स्वप्न भी उन्हीं में से एक था।

वह सरोवर के किनारे बैठे थे और कितनी ही देर बैठे रहे। उनके नेत्र धीरे २ बंद हो गये, और आत्मा ने "अधर निरोध,

❀ चक्षु निरोध, और कर्ण निरोध" के नियम पर चलते हुये उनके सामने और नये दृश्य उपस्थित कर दिये।

समय बीतता गया। सूर्य देव काश्मीर के पर्वतों के पीछे लोप हो गये। धीरे २ अन्धकार बढ़ने लगा। वह पहिले पहल पर्वतों की छाया के रूप में था, फिर प्रगाढ़ अन्धकार के रूप में परिणित हो गया। तब उनके नेत्र खुले और उन्होंने उठ कर अंगड़ाई ली, तो सामने कोई खड़ा था, उसे देख कर उन्होंने कहा, "कौन" ?

"गौतम"—उत्तर में कहा गया।

मनु—आप इस समय इधर ?

गौतम—एक नया समाचार मिला था, उसे निवेदन करने के लिये आ गया। आप समाधिस्थ थे, इसलिये पुकारना उचित न समझा।

मनु--(हंस कर) समाधि तो नहीं थी, पर उससे मिलती जुलती अवस्था थी।

गौतम—ओ३म् !

मनु—इन पर्वतों में इस सरोवर तट पर बैठ कर कई बार देव

❀ एक ब्रह्मवेत्ता का कथन है "लब बिबंदो, चश्म बंदो, गोश बंद। गर न बीनी सिरे हक, बर मन बिखंद"

अर्थात "मुख बंद कर ले, नेत्र बंद कर ले, श्रोत्र बंद कर ले, फिर यदि तुझे भगवान् का रहस्य न प्राप्त हो, तो मेरी खिल्ली उड़ा।"

लोक की स्मृति आती है। आज भी उसी का दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा था।

गौतम—(मुस्करा कर) मैं भी देव लोक का ही समाचार ले कर आया हूं।

मनु—देव लोक का?

गौतम—हां! नाग लोग अब ऊपर वाले पर्वतों तक आते जाते रहते हैं। वहां कृष्ण गंगा नदी के परली ओर "दरद" लोगों की बस्तियाँ हैं। उन लोगों में कुछ समय से यह समाचार है कि ऊँचे पर्वतों और उनके साथ वाले क्षेत्रों में एक नई जाति ने डेरा डाला है, जो गौर वर्ण की है। इस जाति में और वहां के निवासी दस्यु लोगों में कई बार युद्ध हो चुके हैं। दस्यु लोग इन दिशाओं को छोड़ कर अधिक ऊंचे पर्वतों पर चले गये हैं।

मनु—तो आपका क्या विचार है?

गौतम—जो कुछ बताया गया है, उससे अनुमान होता है कि यह गौरवर्ण की जाति देव लोक से ही आई है। और अभी कहीं भी चिरकाल के लिये नहीं ठहरी।

मनु—यदि आप का अनुमान ठीक है तो हमें अपनी इस जाति के लिये कोई ऐसा देश ढूंढ़ना होगा, जहां वह शान्ति से जीवन यापन कर सकें।

गौतम—इस देश का हम भली प्रकार निरीक्षण कर चुके हैं। इस का जल वायु देव लोगों के लिये अच्छा था परन्तु अब यहां

नाग लोग बस गये हैं, इसलिये यह हमारे काम का नहीं रहा।

मनु—आप ठीक कह रहे हैं, कश्यपमीर अब नागों के काम आयेगा। हमें और आगे चलना होगा।

गौतम—यदि आप की इच्छा हो, तो हम उस देश को जिसमें यहां की सब नदियां वहती हुई जाती हैं, और जिसे सप्त सिन्धु कहते हैं, देखने और जाति के लिये प्राप्त करने का यत्न करें। महात्मा नील जब कश्यप जी की खोज में घूम रहे थे तो उन्होंने उसे देखा था, वह मुझ से उसका कथन कर रहे थे।

मनु—विचार अति उत्तम है, निःसन्देह जिस देश में इतनी नदियां प्रवाहित होती हों उसमें धन धान्य की कमी नहीं रहेगी। स्यात इस समय वहां पर द्रविड़ या कोई और लोग रहते हों, परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं होगी, इसलिये देव लोगों के लिये वहां स्थान मिल सकेगा।

गौतम—अवश्य मिल जाना चाहिये। हमारी जाति अब इतनी महान नहीं रही, क्योंकि ज्ञात हुआ है उसका कुछ भाग ही इधर आया है। शेष लोग दूसरी दिशाओं में चले गये हैं।

इड़ा

"भगवन्! क्या इस स्थान पर कहीं रात्रि व्यतीत करने के लिए आश्रय मिल सकेगा?"

महर्षि कश्यप सायंकालीन सन्ध्यावन्दनोपरान्त बैठे थे, हवन यज्ञ की अग्नि सुलग रही थी, और उसमें से सुगन्धित धुवां उठ कर काश्मीर के पर्वतों की ओर अग्रसर हो रहा था। उन पर्वतों पर श्वेत हिम आलोकित हो रही थी, और उसके मुकाबले में धूएं की रेखा साफ दृष्टिगोचर हो रही थी। महर्षि ने मुड़ कर देखा तो सामने एक इकहरे शरीर का नवयुवक खड़ा था, उसके पांव नंगे थे, शरीर के वस्त्र तार २ हो रहे थे, और अंगों को जनता की दृष्टि से छिपाने के लिये उसने उन्हें केले के पत्तों से ढांप दिया था, जिन पर स्थान २ पर उसी पत्ते की तारें लिपट रही थीं। सिर के सुनहरी बाल पीठ पर पड़ रहे थे, जो उसके गौर, सुन्दर वर्ण के साथ उसे स्वर्गीय रूप प्रदान कर रहे थे। महर्षि ने उसे देखकर कहा "आप कौन हैं और कहां से आये हैं?"

नवयुवक को आशा न थी कि उसके शब्द समझ लिये जायेंगे, क्योंकि उसने प्रश्न शुद्ध परन्तु साधारण संस्कृत शब्दों में किया था।

प्रत्युत्तर न देते देख कर महर्षि ने फिर अपने शब्द दुहराये,

और कहा "प्रतीत होता है आप दूर से आये है।"

नवयुवक—ऐसा ही है भगवन्! (दूर स्थित ऊंचे पर्वतों की ओर इंगित करके) उनसे उतरता हुआ आ रहा हूं, रात हो गई है, वसेरा चाहता हूं। दिन निकलते ही चल दूंगा।

ऋषि—आप ने मेरे प्रथम प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

नवयुवक—मैं कौन हूं? यह मैं स्वयं नहीं जानता। लोग इस समय मुझे इड़ा कह कर पुकारते हैं, और जैसा मैंने कहा उन सामने वाले पर्वतों से आ रहा हूं।

ऋषि—आप जिस भाषा में वात कर रहे हैं वह उन पर्वतों में रहने वालों की भाषा नहीं है।

नवयुवक—स्यात आप ठीक कह रहे हैं। पर इस समय मुझे अपनी सुधि नहीं, इसलिये क्या बताऊं? मैं नहीं जानता मेरी जिह्वा क्या कह रही है?

ऋषि ने समझ लिया नवयुवक अत्यन्त क्लान्त है। उसके पांव पत्थरों में चलने के कारण सूज ही नहीं, लहूलुहान भी हो रहे थे। उसका मुख विवर्ण था, और शायद वह अपने आपे में भी नहीं था। इसलिये उस समय अधिक पूछना उचित न समझा, और अतिथि जान कर उसका सत्कार करते हुये कुटिया में ले गये, जहां पाद प्रक्षालन के लिये गर्म जल और पीने के लिये गर्म दुग्ध था। नवयुवक ने हाथ मुंह धोये, आचमन किया, और भगवान् का धन्यवाद करने के पश्चात् गर्म २ दूध पी लिया और फिर नरम घास पर सो गया।

ऋषि भीतर आये, तो देर तक उसके सिरहाने खड़े कुछ विचार करते रहे। ऐसा प्रतीत होता था कि उनका मस्तिष्क उनके सन्मुख कोई प्रश्न रख रहा था, जिसका ठीक २ उत्तर नहीं मिलता था।

दिन निकला और नित्य नियम से निवृत्त होकर इड़ा ऋषि की सेवा में उपस्थित होकर प्रस्थान की आज्ञा मांगने लगा। उस समय उसका मुख प्रसन्न था। ऋषि ने उसे सन्मुख आते और प्रणाम करते देख कर कहा "कहो इड़ा! रात्रि को सुखपूर्वक तो सोये? कोई कष्ट तो नहीं हुआ? तुमने तो रात भोजन भी नहीं किया?"

इड़ा—श्री महाराज की कृपा है, आप का भेजा हुआ दुग्ध पान करने के पश्चात् मुझे निद्रा आ गई। कई रातों से जागा था, सो गया।

ऋषि—और हमने तुम्हारे विश्राम में बाधा डालना उचित न समझा।

इड़ा—यह आपकी कृपा है। अब आज्ञा दीजिये, पथिक अपना मार्ग ले।

ऋषि—कहां जाओगे?

इड़ा—कह नहीं सकता, क्योंकि नहीं जानता कि मेरा लक्ष्य क्या है?

ऋषि—(विस्मित होकर) अपना लक्ष्य न जानते हुए भी जाना चाहते हो?

इड़ा—आगे भी उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा के आश्रय पर चला आ रहा हूं, जो निराश्रित को आश्रय देने वाले हैं। अब भी उन्हीं के भरोसे आगे चला जाऊंगा। कैसे? कहां? स्यात यह तो कोई भी नहीं जानता। मैं ही क्या, संसार का प्रत्येक प्राणी चल रहा है, सूर्य चल रहा है, चन्द्र चल रहा है, पृथ्वी चल रही है, ग्रह और सितारे चल रहे हैं। इस सारे चक्र के कारण को और उसके लक्ष्य को यदि कोई जानता है तो केवल एक पुरुष, परन्तु उसने आज पर्यन्त अपना रहस्य किसी को नहीं बताया।

ऋषि—वास्तव में ऐसा ही है। एक इच्छा और केवल एक इच्छा इस महान् ब्रह्माण्ड को चला रही है। उस इच्छा का स्वामी भी केवल इसलिये स्थिर है कि उसके लिये चलने को स्थान नहीं क्योंकि ऐसा कोई स्थान नहीं जहां वह न हो। उसी इच्छा से बंधे हुए हम लोग यहां पहुंच गये हैं। इस देश में, जिसे हमने पहिले नहीं देखा था। और स्यात उसी इच्छा से बंधे हुये तुम भी यहां आ गये हो।

इड़ा—तो क्या भगवान् इस देश में नवागन्तुक हैं?

ऋषि—कुछ ऐसा ही है।

इड़ा—इससे पहिले भगवान् का स्थान किस देश में था?

ऋषि—इड़ा! तुमने हमें अपने प्रथम निवास स्थान का परिचय नहीं दिया, और अब हमसे वही प्रश्न कर रहे हो। तुम्हें स्यात किसी कारण से अपने हृदय की बात बताने में संकोच हो, पर हमारे लिये ऐसा कोई कारण नहीं। इसलिये कहे देते हैं।

तुमने शायद सुना होगा, इस देश से दूर, अति दूर, एक देश था, हम लोग उसे देवलोक कहते थे। दूसरे लोग उसे उत्तर कुरु पुकारा करते थे। हम नहीं जानते वह किधर था? क्योंकि चिरकाल पर्यन्त चलते रहने के कारण सब कुछ भूल गया है ......

इड़ा—(बात काट कर) तो भगवान् देवलोक से आये हैं?

ऋषि—देव लोक उस इच्छा से बंधा हुआ जिसका वर्णन तुमने किया, जल निमग्न हो गया। हम कुछ लोग भगवान् मत्स्य की कृपा से एक नाव में वहां से चल पड़े, और उन्हीं की दया से दीर्घ काल पर्यन्त चलते रहने के पश्चात् एक पर्वत पर पहुंच गये।

इड़ा—आप लोग? क्या आपकी नाव में आपके अतिरिक्त और कोई भी था? (हृदय स्पन्दन करने और मुख विवर्ण होने लगा)।

ऋषि—हमारे अतिरिक्त उसी नाव में भगवान् अंगिरस थे, और वह हमें पर्वत पर छोड़ कर मत्स्य जी के साथ लौट गये।

इड़ा का चेहरा मुरझा गया। पर ऋषि ने वार्त्ता जारी रखते हुये कहा "उस पर्वत से उतर कर कई नदियों और पर्वतश्रेणियों को पार करके हम एक देश में पहुंच गये, पर वहां अधिक काल पर्यन्त न रह सके थे कि इस देश से सन्देशा पहुंच गया। यहां आकर हमने इस सरोवर के जल को सुखाया और नाग लोगों को आश्रय दिया।

इड़ा—नाग? क्या नाग लोग इस देश में आ बसे हैं?

क्या वह अत्यन्त रूपवती स्त्रियां जिन्हें मैंने इस देश में देखा था, नाग कन्याएं हैं ?

ऋषि—नाग कन्याएं अति सुन्दरी होती हैं। नाग लोग भी रूप यौवन में किसी से कम नहीं। और हां क्यों ना, आखिर देव पुत्र हैं …………हमारे अतिरिक्त उस नाव में अत्रि, गौतम, जमदग्नि, विश्वमित्र, वशिष्ठ और भरद्वाज ये महात्मा और थे।

इड़ा—(शुष्क होती हुई जिह्वा के साथ जो कठिनता से शब्द निकाल रही थी) तो केवल यही सात पुरुष उस नाव में बच कर आये ?

ऋषि—हां !

(इड़ा का हृदय बैठने लगा)

परन्तु ऋषि का वार्त्तालाप चलता रहा, और उन्होंने कहा "हम अपने महापितर की आज्ञानुसार इस देश में कार्य कर रहे हैं।"

इड़ा—आपका महापितर ?

ऋषि—हम उनके साथ ऐरावत खण्ड को गये थे, और उन्हीं के साथ इस देश को आये हैं।

इड़ा—उनका नाम ?

ऋषि—उन्हें हम नाम लेकर नहीं पुकारते। वह हमारे पूज्य हैं। पर उन्हें "मनु" कहा जाता है। हमारे लिये वे वैसे ही हैं जैसे शरीर के लिये मन।

नवयुवक धड़ाम से गिरा । ऋषि शीघ्रता से उठे, तो वह मूर्छित था। उन्होंने उसके कुर्ते के गले को खोला, और उसे ढीला करके फिर बंद कर दिया। चेहरे पर जल छिड़का, तलवों और हथेलियों को सहलाया, सुधि लाने वाली बूटियां सुंघाई। कुछ समय पश्चात् उसने नेत्र खोले, तो ऋषि ने मुस्करा कर कहा, "क्यों क्या बात थी?"

इड़ा—(धीरे से) कुछ नहीं, मैं नितान्त स्वस्थ हूं।

ऋषि—तुम बेसुध हो गये थे। ज्ञात है?

इड़ा—इस कारण कि यह अभागा भी देव लोक के वासियों में से एक है!

ऋषि—हमारा आरम्भ से ही ऐसा विचार था। तुम यहां कैसे आये? यह कथा अवश्य श्रवण करने योग्य होगी, परन्तु जब तक तुम्हारी अवस्था ठीक नहीं हो जाती हम तुम्हें उसे कहने के लिये बाध्य नहीं करेंगे।

(थोड़ा दुग्ध पिला कर) तुम्हें अभी और विश्राम की आवश्यकता है।

इड़ा की कथा

समस्त ऋषि गण और मनु जी बैठे थे, और इड़ा उन्हें देव और आर्य लोगों का देवलोक और आर्य वैजो से निकलने का वृत्तान्त सुना कर कह रहा था, "रात अन्धेरी थी, चारों ओर घटाटोप अन्धकार फैल रहा था, हम लोग दस्यु लोगों को पराजित करके सो रहे थे, मैं स्वप्न देख रहा था, कि मेरी आंख खुल गई और मुझे भास हुआ कि मेरे निकट कोई मनुष्य है। पर अन्धेरे में किसी की शक्ल दिखाई न दी। मैंने समझा स्यात यह उस स्वप्न का एक अङ्ग है, जिसे मैं देख रहा था। इसलिये फिर सो गया। ज्ञात नहीं कितनी देर सोया रहा, पर जब जागा तो ज्ञात हुआ, हाथ पांव बंधे हैं और कोई व्यक्ति मेरे गले पर खड्ग रक्खे कह रहा है "खबरदार! जबान खोली तो गला काट दूंगा।"

मैं कायर न था, पर हाथ पांव बंधे थे, इसलिये कुछ करते धरते न बन पड़ा। उस व्यक्ति ने जिसके साथ उसके कुछ सहायक भी थे, मेरे मुख में कपड़ा ठोंसना प्रारम्भ कर दिया। मैंने कुछ बाधा डाली, परन्तु दोनों हाथ और दोनों टागें एक २ बलवान मनुष्य के काबू में थीं। इसलिये कोई यत्न सफल न हुआ। मुझे बांध कर उठाया गया, और बाहर ला कर एक छकड़े में रख दिया गया। इसके पश्चात् कई और मनुष्यों को उसी भांति उस छकड़े में फेंका

गया। उस समय प्रतीत होता था शायद हमारे वंश का एक २ व्यक्ति बांध लिया गया है। फिर छकड़े धीरे २ बिना किसी शब्द के चले, और पता नहीं कितनी दूर निकल गये। दूरी पर हमारे लोगों में कोलाहल के शब्द सुनाई दिये, पर हमें पकड़ने में कोई सफल न हो सका।

दिन के समय हमें ले जाने वाले किसी न किसी गुप्त स्थान पर छिप जाते, और रात्रि को चलते। इस प्रकार हमें ज्ञात नहीं था कि हम कहां जा रहे हैं। कई दिवस ऐसा होता रहा, तत्पश्चात् ऐसा प्रतीत हुआ कि हमें आगे नहीं चलना। क्योंकि हमारे मुख खोल दिये गये, और हमें अलग २ करके एक २ ओर ले जाया गया। दूसरों के सम्बन्ध में मुझे ज्ञात नहीं, परन्तु मुझे पर्वत की एक अन्धेरी गुफा में बंद करके उस पर एक भारी पत्थर रख दिया गया। बाहर दो मनुष्य पहरा देने लगे। पत्थर के आस पास के छेदों से थोड़ी सी वायु आती थी, और उनके शब्द भी मुझे सुनाई दे जाते थे। और यद्यपि उनका वार्त्तालाप पूर्णतया मेरी बुद्धि में न आता था, तो भी अल्पकाल में ही मैंने यह जान लिया कि हम लोगों को नाग की भेंट चढ़ाया जाना है। और उस के लिये उचित तिथि की प्रतीक्षा की जा रही है। शायद किसी पुजारी के आने का भी विचार था।

हम ने पहले सुन रखा था कि दस्यु लोगों का एक राजा दुहाक❀ है, जिसने आर्य लोगों के राजा यम को

❀ फिरदौसी ने शाहनामे में इसका नाम जुहाक लिखा है।

पराजित करके उनके देश पर अधिकार कर लिया है। यम ने प्रजा से यह इच्छा प्रगट की थी कि वह उसकी पूजा करें क्योंकि उसने उन्हें कृषि आदि सब विद्यायें सिखाई हैं, और वही उनका अन्नदाता ईश्वर है। यह देख कर आर्य लोग धीरे २ उसका त्याग करने लगे। उनसे त्यक्त हुये यम दुहाक के भय से देश छोड़ कर भाग गये, परन्तु पकड़े जा कर मारे गये।

दुहाक प्रतिदिन दो व्यक्तियों को नाग देवता के लिये बलि दिया करता था। हमें भी उचित समय पर उसी प्रकार उस देवता के चरणों में चढ़ाया जाना था। जब यह बात ज्ञात हुई, तो मैंने निश्चय कर लिया कि नाग का शिकार होने से पहिले उस काल कोठड़ी से, जिसमें मुझे रक्खा गया था, भागने का यत्न अवश्य करूंगा।

परमात्मा ने मेरी सहायता की, और थोड़े दिनों के परिश्रम के पश्चात् मुझे यह निश्चय हो गया, कि मेरे कारागार के पत्थर की शिला उठाई जा सकती है। फिर वह रात आगई, काली और अन्धियारी, जब मेरे पहरेदार घोर निद्रा में मग्न हो गये, और उनके खर्राटे ज़ोर २ से मेरे कानों में पड़कर मुझे बाहर निकलने के लिये उत्तेजित करने लगे। मैंने पत्थर को सरकाया, और धीरे से बाहर निकला, तो चारों ओर घुप अन्धेरा था, और हाथ को हाथ न सूझता था। इतने में एक ओर बिजली कौंदी। उसके क्षणिक प्रकाश में मैंने देखा, कि मेरे हवालाती सो रहे हैं, और उनके शस्त्र पास पड़े हैं। उन्हें कई दिन मेरे कारागार के बाहर

पहरा देते हो गये थे, और मैं ऐसा भला वन्दी सिद्ध हुआ था, कि उन्हें मेरी कोई चिन्ता न रही थी।

मैंने उनमें से एक का खड़ग उठाया, और उसे तोलते हुये उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। मरने वाले के मुख से कोई शब्द न निकलते देखकर मैंने दूसरे का भी सफ़ाया किया, और उनके शस्त्रों को लेकर बाहर निकला।"

यहाँ पहुंचकर इड़ा के शरीर में कपकपी सी छा गई, और उसके मुख से निकला "मैं नहीं जानता मेरा यह कर्म पाप था या कुछ और, परन्तु उन पहरेदारों की सूरतें सदैव मेरी दृष्टि के सामने फिरती रहती हैं।"

"अब उस स्थान से बाहर निकलने का काम था। नहीं जानता था कि वहां से किधर को कौन मार्ग जाता है, भगवान् भरोसे ही चल निकला। संकल्प दृढ़ था कि जीवन को बेचना पड़ा तो किसी महंगे मूल्य पर बेचूंगा, शस्त्र हाथ में था।

तत्पश्चात् क्या हुआ और किधर र भटका, यह बता नहीं सकता, क्योंकि इन देशों, पर्वतों, नदियों का मुझे कोई ज्ञान नहीं था। दिन निकला, तो मैं एक जंगल के कांटों में धंसा जा रहा था। पर वहाँ कुछ फल फूल खाने को मिल गये। फिर एक बहुत ऊंचे वृक्ष पर चढ़ कर चारों ओर देखा, तो दूर पर्वतों के भीतर एक रेखा सी दिखाई दी, वह स्यात कोई पगडंडी थी। मैं वृक्ष से नीचे उतरा और उधर को चल दिया। कुछ दूर चल कर एक शब्द कर्णगोचर हुआ, जो किसी सिंह का था। जानता

था कि सिंह वृक्ष पर नहीं चढ़ सकता, इसलिये दौड़ कर पास वाले वृक्ष की चोटी पर चढ़ गया, परन्तु सिंह किसी और दिशा को जा रहा था। इस प्रकार कई स्थानों पर भटकता हुआ, कई दिनों के पीछे, एक ऊंचे पर्वत पर पहुंच गया। उसके आगे गहरे जल की एक नदी बह रही थी, जिस में ऊंचे २ पत्थर पड़े थे। नदी को पार करने के लिये उस में उतरा, तो जल के वेग से पत्थरों पर गिरा। इस से शरीर घायल हो गया। परन्तु रात आ रही थी, इस लिये घावों की ओर ध्यान न देता हुआ गिरता पड़ता उससे पार हो गया। पर पार जाने पर मार्ग का कोई चिन्ह न था, और घना वन नदी के किनारे २ दूर तक चला गया था। वृक्षों के फल फूल और पत्तों से क्षुधा निवारण करके आगे बढ़ा, तो एक पगडण्डी पर कुछ लोग चलते दिखाई दिये जिन की शक्ल सूरत अद्‌भुत सी थी। भय था कि शत्रु न हों, इसलिये वन के भीतर छिप कर एक वृक्ष पर चढ़ रात्रि व्यतीत करने का संकल्प किया।

ओह! वह रात्रि! अन्धेरा होते ही वन्य पशु चारों ओर से निकलने और अपनी क्षुधा शान्त करने का उपाय करने लगे। उन में से कई एक मेरी बू पा कर उस वृक्ष के निकट आते और मेरी ओर आंखें फाड़ २ कर देखते थे। पर भगवान् की कृपा से किसी ने वृक्ष पर चढ़ने का साहस न किया।

किन २ आपत्तियों और दुखों को झेल कर मैं यहां पहुंचा, यह मैं जानता हूं या मेरा परमात्मा। पर अब आप लोगों का

दर्शन कर के मेरे सारे दुःख स्वप्न की भांति लुप्त हो रहे हैं। (कुछ देर ठहर कर) एक दिन की घटना है, मैं दिन के समय वृक्षों में छिपा बैठा था, कि सामने पृथ्वी पर एक भारी अजगर की शक्ल दीख पड़ी जो लम्बाई में सात आठ गज और मोटाई में गज भर से कम न होगा। यह अजगर शायद क्षुधा निवृत्ति के लिये जा रहा था उसी समय एक वन्य हस्ती ने मुझे वृक्ष के ऊपर बैठे देख लिया, और मुझे नीचे गिराने के लिये वृक्ष को धक्के देने लगा। वृक्ष उसके धक्कों से कांप रहा था, और मैं ऊपर बैठा यह समझ रहा था, कि अगले क्षण में पृथ्वी पर गिर कर हस्ती के पांव तले मसला जाऊँगा।

मारने वाले से बचाने वाला अधिक शक्तिशाली है, यह उसी समय ज्ञात हुआ, क्योंकि दूसरी ओर से एक वृहत काय वाराह ने निकल कर अपना सींग हाथी के पेट में घोंप दिया। हाथी की उस समय की चिंघाड़ कर्ण कुहरों को भेद रही थी। तत्पश्चात् वन के दोनों वासियों में भयानक युद्ध छिड़ गया।

हाथी के पेट में वाराह के सींग ने घाव कर दिया था, और उससे लाल २ रक्त बह कर पृथ्वी को कीचड़ बना रहा था। हाथी उसका प्रतिशोध लेने के लिये वाराह को कुचल कर नष्ट करना चाहता था, परन्तु वाराह फुर्तीला था इसलिये उससे बचकर उसपर आक्रमण कर रहा था। इसी बीच में वन में सिंह की दहाड़ फिर गूंजी, और ज्ञात नहीं क्यों हाथी और वाराह दोनों ही युद्ध छोड़ कर भाग गये। उनके प्रस्थान के पश्चात् मेरी यह दशा थी कि

काटो तो शरीर में रक्त नहीं। पर निद्राग्रस्त मनुष्य की भांति जागा, और उस भगवान् का ध्यान करके जो मृतकों को जीवन दान देता है, उसका धन्यवाद करने लगा। फिर क्या हुआ, इसे बताना कथा को लम्बा करना है। सारांश यह कि गिरता पड़ता, छिपता छिपाता, अब आपके सन्मुख हूं और आप आज्ञा देंगे तो इसी भांति आगे को प्रस्थान करूँगा, जब तक कि अमर आत्मा नश्वर शरीर को छोड़ न दे।

मेजर जनरल डौनेल्ड मौसिनटाइर (Major-General Donald Macintyar) साहिब ने अपनी पुस्तक "हिन्दकोह" के पृष्ठ १३६–१४० पर एक अजगर के शिकार की मनोरंजक कथा लिखी है। यह अजगर २१ फीट लम्बा और २ फीट मोटा था। उसका बल इतना था कि जब वह अपनी बाम्बी में छिपा बैठा था तो उसकी बाहर निकली हुई दुम के साथ मेजर जनरल साहिब के सहकारियों ने एक दोहरी रस्सी जो मनुष्य के अंगूठे से अधिक मोटी थी बांधकर गांठ दे दी, और उसके दोनों सिरे हाथी के हौदे से बांध कर हाथी को चला दिया। हाथी रस्सी को एक ओर खेंच रहा था और अजगर दुसरी ओर। दोनों की शक्ति का मुकाबला था। इस बीच में रस्सी का एक भाग तड़ाक से टूट गया, यही हाल दुसरे भाग का भी हुआ। परन्तु अजगर बिल से बाहर न निकला। बाद में उसे गोली से मारा गया तो हाथी के लिये उसके बोझ को उठाना कठिन हो गया।

इड़ा या श्रद्धा ?

❀ "इड़ा", 'इला', यह शब्द अन्न, पृथ्वी, वाणी, भौतिक अग्नि, आकाश वासिनी विद्युत, गो इत्यादि कई अर्थों में बोला जाता है। इसे आपने अपने नाम के साथ किस भाव को ले कर लगाया है" ? मुस्कराते हुये मनु जी ने इड़ा को सम्बोधन करके कहा—उस समय अन्य ऋषि अपने २ नित्य कार्यों में मग्न थे, और देव लोक से निर्वासित यह दोनों व्यक्ति पर्वत के आंचल में सरोवर के तट पर बैठे थे।

इड़ा—एक ही वस्तु मन के अन्दर वास करती है तो "श्रद्धा" कहलाती है। मन से निकल कर जिह्वा से बाहर होती है तो "वाणी" बन जाती है। ओजस्विनी होकर अन्य हृदयों में तेज उत्पन्न करती है, तो "विद्युत" कही जाती है। शत्रुओं के हृदयों को दग्ध करती है, तो "अग्नि" रूप धारण करती है। और जब अमृत वर्षा करती है, तो "अन्न" के रूप में परिवर्तित होती है। वही वस्तु "पृथ्वी" रूप में अन्न को उत्पन्न करती है, "गो" रूप में अमृत रूपी दुग्ध दान करती हुई प्राणी मात्र में जीवन संचार करती है। ब्राह्मण वचन है "अग्नि सर्वः देवता" अर्थात् अग्नि सब देवता हैं। वेद वाक्य है, अग्नि को "इन्द्र,

---

❀देखो यास्काचार्य का निरुक्त और निघण्टु

मित्र, वरुण कहते हैं, वह दिव्य (सूर्य) है, सपर्ण (जीवात्मा) है, गुरुत्मान (परमात्मा), यम (मृत्यु), मातृश्वा (वायु) है। उस महान् रूप वाले एक अग्नि को बुद्धिमान् लोग अनेक प्रकार से कहते हैं ?"

मनु—(मुस्कराते हुए) श्रद्धा मन से बाहर निकल कर अग्नि रूप हो जाती है ?

इड़ा—विचार तो ऐसा ही है।

मनु—और अग्नि "इड़ा" रूप धारण करके शत्रुओं का विनाश कर देती है ?

इड़ा ने कोई उत्तर न दिया, उसके नेत्र नत हो गये।

मनु—(उसकी ओर निहारते हुए) इड़ा ! श्रद्धा ! श्रद्धा ! इड़ा ! "एक ही रूप को बुद्धिमान् अनेक प्रकार से कहते हैं ?"

इड़ा मौन था, उसका चेहरा रंग बदल रहा था।

मनु—"तत्त्वेत्ता अनेक में एक के दर्शन करते हैं ?" क्या मैं आपका तात्पर्य्य ठीक वर्णन कर रहा हूं ?

इड़ा—मैं नहीं समझा।

मनु—एक स्त्री थी, वह पहिले जन्म में "श्रद्धा" कहलाती थी। उस समय वह किसी के मन में बसती थी। फिर वह मन उस से दूर हो गया, तो वह स्त्री पुरुष बन गई, और उसका नाम "इड़ा" हुआ। उसने किसी दूसरी स्त्री से विवाह किया, उस से सन्तान उत्पन्न हुई, और यद्यपि वह जिसके मन में बसती थी और जिसकी आत्मा का वह दूसरा भाग थी, उसे प्रत्येक रूप में पहचानता था,

पर कठिनता यह हो गई कि वह स्त्री स्त्री ही न रही।

इड़ा— क्या स्त्री पुरुष बन सकती है ?

मनु—इसका उत्तर मैं कैसे दूं ? सम्भव है ऐसा हुआ हो। यह भी सम्भव है कि उसने केवल वेश ही पुरुष का धारण किया हो।

इड़ा खिलखिला कर हँस पड़ा, क्योंकि उसके लिये इस धोखे को अधिक समय तक छिपाना असम्भव था। वह हँसता हुआ मनु के चरणों में गिर गया। तत्पश्चात् उसकी हँसी अश्रुधारा में परिवर्त्तित हो गई। उस समय उसके मुख से निकला "भगवन् ! "श्रद्धा" हो या "इड़ा", वह आपकी है, और आपकी ही रहेगी।

मनु—(उसे चरणों से उठाते हुये) तो मेरा अनुमान ग़लत नहीं है, मनु अपनी श्रद्धा को पुरुष रूप में अपने सामने देख रहा है।

इड़ा—(आंसू पोंछते हुए) श्राद्ध देव ! इतने कष्ट सहन करके श्रद्धा को आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसे चरणों से अलग न कीजिये।

मनु—श्रद्धा ! दस्यु लोगों के हाथों तुमने इतने कष्ट सहे, मेरी जाति ने इतने कष्ट सहे, और मैं तुम्हारी और उसकी कोई सेवा न कर सका। यह विचार मुझे सर्वदा दुःखित करता रहेगा।

श्रद्धा—इस भ्रमण में मुझे कई बातों का ज्ञान हुआ है। आप यज्ञ करते हैं, दस्यु लोग भी अपनी श्रद्धा के अनुसार यज्ञ करते हैं। उनके यज्ञों में पशुओं को बलि दी जाती है। इस समय भी

वह एक भारी यज्ञ के लिए अग्नि रख रहे हैं। परन्तु आपकी श्रद्धा आपके लिये वह अग्नि रक्खेगी जिससे आपकी प्रजा, धन, धान्य में वृद्धि होगी, और आप इस जगत् में शक्ति प्राप्त करके स्वर्गलोक❀ को विजय करेंगे। इसलिये आप गार्हपत्याग्नि+ प्रज्वलित कीजिये, पुरुष इड़ा स्त्री श्रद्धा बन जायेगी।

मनु—ओ३म्।

❀ तैत्रेय ब्राह्मण।

+ वह अग्नि जो विवाह के समय जलाई जाती है।

रक्त रात्रि के पश्चात्

देवियों की सेना शत्रु को पर्वतों की कन्दराओं में धकेल कर प्रसन्न थी। इन्द्र अपने विरोधी वृत्र को पराजित करके सन्तुष्ट थे। परन्तु जब उन्हें रक्त रात्रि की बात का ज्ञान हुआ जो इड़ा ने अपनी कथा सुनाते हुये कही थी, तो सब के रक्त में उबाल आ गया। श्रद्धा का सेना में से गुम होना ऐसी बात थी जिसने देव जाति के शीश को लज्जा से झुका दिया! इस सत्य का प्रगट होना था कि काली देवी ने यह भीषण शपथ ली कि "यदि श्रद्धा देवी का भौतिक शरीर जीवित जाग्रत रूप में न मिला, तो मैं उस समय तक चैन से न बैठूंगी जब तक एक भी दस्यु जीवित है।" इन्द्र देव ने पुरुषों की सभा में इसका प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा करते हुये कहा "हमें ज्ञात है कि दस्यु लोगों ने इन पर्वत देशों में कई दुर्ग बना रक्खे हैं, हम उन्हें मिट्टी में मिला कर रहेंगे।"

इन भीषण प्रतिज्ञाओं को पूर्ण करने के लिये देव सेना को कई भागों में विभक्त करके पर्वतों पर चढ़ने की आज्ञा दी गई। इन सेनाओं ने अल्पकाल में ही कई स्थानों पर दस्यु लोगों को विध्वंस करके उन्हें दुर्गों के भीतर बंद होने पर विवश कर दिया।

दस्यु लोगों के दुर्ग पर्वतों के अनेक भागों में उन स्थानों पर बने थे जिन्हें विजय करना असम्भव समझा जाता था, परन्तु देव

सेना का जोश भड़क चुका था इसलिये उसके बढ़ते हुये क्रोध की बाढ़ के आगे किसी का खड़ा रहना सुगम नहीं था। मित्र और वरुण प्रलय के मेघों की भांति उठे, और प्राण हथेली पर रखकर किलों की दीवालों को फांद गये। मरुत वीरों की गति आज तक आँधी और झक्कड़ के समान कही जाती है, वह जिधर को लपके वृक्षों को उखाड़ते, किलों की ईंट से ईंट बजाते, नगरों और झोंपड़ियों को तोड़ते हुये आगे निकल गये। अग्निदेव अग्नि का ही रूप बन रहे थे! उनके अग्नि बाणों ने शत्रुओं के दुर्गों में आग लगाकर उन्हें विवश कर दिया, कि वह दुर्गों को छोड़ कर खुले मैदान में युद्ध करें। परन्तु युद्ध क्षेत्र में देव सेना का मुकाबला न आज तक हो सका था न हुआ। दस्यु सरदार वृत्र ने इन युद्धों में अपनी वीरता की वह धाक जमाई कि शत्रु भी उसका लोहा मान गये। देव सेनापति इन्द्र के साथ उसका आमने सामने मुकाबला हुआ, परन्तु अन्त में उसे पीछे हटना पड़ा, क्योंकि उसके साथियों में वह साहस नहीं था जो उनके सरदार ने पाया था। महीनों तक युद्ध का क्रम जारी रहा, जिसमें दस्यु लोगों की भारी हानि हुई और अन्त में उन्हें सन्धि के लिये प्रार्थना करनी पड़ी। इसके उत्तर में कहा गया कि "देव लोग न युद्ध की इच्छा रखते थे, न ही उनकी ओर से युद्ध आरम्भ हुआ, और अब भी उसका अन्त हो सकता है यदि दस्यु लोग उन समस्त स्त्रियों को लौटा दें जिन्हें वह ले गये हैं।" वृत्र इस मांग को ठीक समझते थे, परन्तु उनके अनुयायी इसके लिये उद्यत न थे। परिणाम यह हुआ कि युद्ध फिर जोरों से होने लगा और देव सेनाएं चारों ओर फैल गईं।

उन्होंने पर्वतों की कन्दराओं में से हरण की हुई देव स्त्रियों का पता निकाला, परन्तु जब उन्हें शिविर में लाया गया तो ज्ञात हुआ कि दस्यु लोगों ने उनमें से बहुत सी के सतीत्व को नष्ट कर दिया है। वह बेचारी लज्जा की मूर्त्ति बनी हुई सिर झुकाए खड़ी थीं, देव सभा उन्हें फिर से समाज में सम्मानित स्थान देने के प्रश्न पर विचार कर रही थी, जब अत्रि जी ने उसे और देव सेना को सम्बोधन करके कहा "यह देवियां जिस अवस्था में हरी गईं, उसे स्मरण करके कौन कह सकता है कि यह अपवित्र हो गईं ? निस्सन्देह अस्थि, मांस और मज्जा के शरीर में यदि कोई वस्तु पवित्र है तो वह आत्मा है। आत्मा उस समय तक अपवित्र नहीं होता जब तक वह पाप कर्म न करे। पाप और पुण्य का सम्बन्ध मन से है। जिस का मन पवित्र है वह सारे संसार का वध करके भी पापी नहीं होता। और इन देवियों को तो धोखे और बल से अपने सती धर्म से गिराया गया है !

परमात्मा ने, जगन्नियन्ता ने, स्त्री के शरीर में वह कला रख दी है जिससे वह हर मास स्वयं शुद्ध हो जाती है। ऋतु धर्म स्त्री के शरीर की शुद्धि का साधन है। ऋतु धर्म हो जाने के पश्चात् सन्तान की उत्पत्ति ऐसा कर्म है जो स्त्री के शरीर के समस्त मल को धो डालता है। इसलिये स्त्री कभी भी अपवित्र नहीं रह सकती।" ❀

❀ देखो अत्रि संहिता।

महर्षि के इस कथन ने उस बड़ी और पेचीदा ग्रन्थि को खोल दिया, जिसने देव लोगों को दुविधा में डाल रक्खा था। साथ ही दस्यु लोगों के सामने एक नई समस्या रख दी, क्योंकि वह समझते थे कि देव लोग इन स्त्रियों को अपवित्र समझ कर उन्हें दस्यु लोगों को लौटा देंगे, और इस प्रकार वह उन्हें अपने पास रखने में सफल हो जायेंगे। परन्तु यहां मामला ही उलट गया।

दस्यु लोगों के नौ दुर्ग टूट गये। उन्होंने पग २ पर जम कर सामना किया, परन्तु कब तक? अन्त में अपने २ प्राण लेकर भागे। भागते हुओं में से कई देव लोगों के हाथों में पड़ कर अपनी स्वतन्त्रता को सदैव के लिये खो बैठे। "दस्यु" का शब्द "दास" अर्थात गुलाम का पर्यायवाची बन गया।

यह सब कुछ हो चुका, परन्तु देव लोगों को भी ज्ञात हो गया कि उनके लिये इन पर्वत प्रदेशों में शान्त जीवन यापन करना असम्भव है, क्योंकि शत्रु के लिये पर्वतों में छिप कर आक्रमण करना सुगम था। इसलिये वे विचार कर ही रहे थे कि अगला कार्यक्रम क्या हो? जब सेनापति इन्द्र को सन्देश मिला कि कोई महात्मा उनसे मिलने की इच्छा से बाहर खड़े हैं। वह सामने आये, तो ज्ञात हुआ कि महर्षि वशिष्ठ मनु जी का सन्देश लेकर आये हैं। उन्हें देख कर इन्द्र घबराये, परन्तु वशिष्ठ जी ने उनके

विस्मय को निवारण करते हुए कहा "भगवान् विस्मित न हों, इतने समय के पश्चात् एक दूसरे को पहचानना सुगम नहीं। हमारा नाम वशिष्ठ है, और हम देवजाति के महापितर भगवान् मनु का सन्देश लेकर आपकी सेवा में आये हैं, उस संदेश में देवी श्रद्धा की यह शुभ आकांक्षा भी सम्मिलित है कि आप इस पर्वत प्रदेश को त्याग कर मैदानों में उतर आयें। सप्त सिन्धु जो कभी एक भारी सागर के नीचे था, शुष्क होकर अब सिन्धु समान बड़े बड़े महानदों के जल से सिंचित हो रहा है। उसमें धन धान्य की कमी नहीं है। आप के महापितर ने उसे खाली देख कर अपनी प्रिय जाति के नाम पर उसे अपने आधीन कर लिया है। उस देश से आगे और कई प्रदेश आपका मार्ग देखते हुये आपका स्वागत करने को उद्यत हैं। विश्वमित्र, भरद्वाज आदि महात्मा उन प्रदेशों में यज्ञ कर रहे हैं। हमने उस देश को "ब्रह्मावर्त्त" का नाम दिया है, आप आकर उसे शीघ्र अपनाइये।"

इस सन्देश के मिलने, और यह ज्ञात होने से, कि श्रद्धा ही नहीं मनु और शेष ऋषि भी जीवित हैं, समस्त देव जाति में आनन्द की लहर दौड़ गई, और उन्होंने आवश्यक तैयारियां करके पहाड़ी प्रदेशों से नीचे उतरने की ठानी। उस समय नवयुवक गरुड़ अपने लोगों के साथ पृष्ठ से उनकी रक्षा कर रहा था।

असुर यज्ञ

सप्त सिन्धु का एक बड़ा भाग देव लोगों के सन्मुख नतमस्तक हो गया। पामीर और हिन्दू कुश की उपत्यका उनके निवास के लिये अपर्याप्त थीं, अफगानिस्तान और बलोचिस्तान के प्रदेश उनके बढ़े हुये साहस को रोक नहीं सके थे। पञ्जाब के महानदों के किनारे मनु जी और उनके साथियों के परिश्रम के फलस्वरूप पहिले से ही गुलज़ार बन चुके थे, उनके चारों ओर गेहूं, गन्ने, मक्की, चावल के खेत लहलहा रहे थे, इसलिये नवागन्तुकों का स्वागत किया गया। दस्यु लोगों के एक भाग ने उनका मार्ग रोका, परन्तु देव लोग अब नये खिलाड़ी नहीं रहे थे, वह अनुभव की अग्नि में से निकल कर कुन्दन बन चुके थे। इसलिये उन्होंने बाधाओं की ओर ध्यान न देते हुए सप्त सिन्धु में पुरों और नगरों की नींव डाल दी। अफगानिस्तान की सीमा पर बहने वाली स्वस्तु, कुभ, क्रुमु, गोमती आदि नदियों के अतिरिक्त सिन्धु, वितस्ता, असिकनी (चिनाव), परुसनी (रावी), शतद्रु (सतलुज), विपासा (व्यास), तथा सरस्वती आदि महानद हिमालय पर्वत श्रेणी के जल को चहुं ओर बखेर रहे थे। उनका आश्रय पाकर यदु, अनु आदि जातियों ने दक्षिण में, और द्रुह्यु, कैकेय आदि ने सिन्धु तीर और भीतरी देश में बस्तियां बसा लीं। अन्य जातियों ने सरस्वती और दृष्द्वती के भीतरी प्रदेश को अपना गृह बना लिया।

सन्ध्या का समय था। मनु सायंकाल की संध्या से निवृत्त होकर बैठे थे, कि पता मिला कि दस्यु और असुरों के दो पुरोहित त्रिष्ठा और दरोत्रि दर्शन की इच्छा से आये हैं। वह इससे प्रथम भी कई बार आकर वार्त्तालाप कर चुके थे, इसलिये उन्हें आने की आज्ञा मिल गई। वार्त्तालाप प्रारम्भ हुआ तो उन्होंने कहा "आप यज्ञ और यज्ञ कार्यों में बहुत उत्सुकता रखते हैं। हमने भी अपनी विधि से इस विद्या को सीखा है, परन्तु हमारी और आप लोगों की विधि में अन्तर है। आप औषधि, बूटियों तथा सुगन्धित वस्तुओं से यज्ञ करते हैं। हम यज्ञ के द्वारा देवताओं को पशु और मनुष्य के मांस की बलि देते हैं, और हमारे देवता यज्ञ के पश्चात् उन पशुओं और मनुष्यों को पुनर्जीवित कर देते हैं। हमारा विचार है कि हमारे यज्ञ आपके यज्ञों से अधिक और शीघ्र फल देते हैं, क्योंकि उनमें यजमान अपनी प्रियतम वस्तु को यज्ञ अग्नि में स्वाहा करते हैं।"

मनु--यज्ञ में डाल कर अग्नि में जलाये हुये पशु को आप पुनर्जीवित कर सकते हैं? आपके देवता हिंसा से प्रसन्न होते हैं?

असुर पुरोहित—निस्सन्देह।

मनु—यह असम्भव है।

इस पर कुछ काल तक विवाद होता रहा, शर्तें लगीं, और अन्त में इसे प्रत्यक्ष करके दिखाने का निर्णय हुआ। परन्तु प्रश्न था कि बलिदान के लिये कौन आगे आये? असुर पुरोहितों की ज़िद थी कि यजमान को अपनी सर्वश्रेष्ठ और प्रियतम वस्तु को देवता के

लिये बलि देना होगा। मनु जी की दृष्टि में श्रद्धा से बढ़कर कोई प्रिय वस्तु न थी, परन्तु वह कैसे उसे बलिदान के लिये प्रस्तुत कर देते? पर समस्या हल हो गई जब स्वयं श्रद्धा ने कहा "विज्ञान के लिये मैं अपना बलिदान देने को उद्यत हूं।"

असुर पुरोहितों ने साधुवाद से इसका समर्थन किया, और यज्ञ के लिये तैयारियां होने लगीं। श्रद्धा के चारों ओर अग्नि फिराई जाने लगी।

इन्द्र यह कौतुक देख रहे थे। उन्होंने देखा कि असुर धोखे से श्रद्धा की हत्या कर देंगे, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि मृत को जीवित करने की शक्ति उन लोगों में नहीं है। इसलिये उन्होंने आगे बढ़ कर कहा "भगवन् मैंने भी असुर यज्ञ की विधि सीखी है। पामीर की पर्वत श्रेणियों में मैंने ऐसे बहुत से यज्ञ किये और कराये हैं, और उन्हीं के फलस्वरूप आज वह पर्वत प्रदेश असुर रहित हो गये हैं। आप मुझे इस यज्ञ के करने की आज्ञा दीजिये।

मनु—आप किस से यज्ञ करेंगे?

इन्द्र—मैं इन असुर ब्राह्मणों की बलि देकर यज्ञ करूंगा।

मनु—परन्तु मैं इसकी आज्ञा कैसे दे सकता हूं? मैं इनका ईश नहीं।

इन्द्र—ये अतिथि हैं और निस्सन्देह अतिथिपति अतिथि का ईश है। अतिथिपति को अतिथि से बढ़ कर प्रिय और कौन हो सकता है?

मनु—आप ठीक कहते हैं। अच्छा यदि आप यह यज्ञ करना चाहते हैं तो मेरी ओर से आज्ञा है।

इन्द्र वेदी का सामान तैयार करने लगे। यह देख कर असुर पुरोहितों ने पूछा "आप कौन हैं?"

इन्द्र—ब्राह्मण।

असुर पुरोहित—कौन ब्राह्मण?

इन्द्र—ब्राह्मण के माता पिता का नाम पूछते हो? श्रुति वेद उसकी माता और पिता हैं।

असुर पुरोहितों ने देखा कि बात बेढब हो गई। इसलिये धीरे से खिसक कर भागे, परन्तु इन्द्र कहां भागने देते थे, उन्होंने दो अर्ध चन्द्र बाणों से दोनों के सिर काट डाले और मनु जी से कहा "भगवन् आपको अभी तक इन लोगों से वास्ता नहीं पड़ा, इन्हें ज्ञात है कि श्रद्धा सर्वदा आप की रक्षा करती रहती है, इसलिये वह आप की ही आज्ञा से इसे मार कर आपको नष्ट करना चाहते थे। इस प्रकार के धोखे इन लोगों का दैनिक कार्य हो चला है। हमने सहस्रों बलिदान देकर यह सीखा है। यह असुर यज्ञ है"*।

---

* देखो काठक ब्राह्मण।

नव विधान

"परम पिता परमात्मा की अपार कृपा से हम लोगों को वह स्थान मिल गया, जिसे हम "अपना देश" कह सकते हैं। देवलोक से चलते समय मुझे और आपको यह स्वप्न भी न आया था कि कभी हम फिर से किसी देश को "अपना" कहने के योग्य हो सकेंगे। उस समय हम लोग दुखी थे। कितने दुखी थे इसे आप लोगों के अतिरिक्त कौन बता सकता है जिन्होंने वह कष्ट झेले हैं? उन लोगों में से जो देवलोक से चले थे, कितने ही मार्ग में यमपुर सिधार गये। उनके भौतिक शरीरों को फिर से मिलाना किसी शक्ति के आधीन नहीं। परन्तु जो शेष रह गये हैं उनका यह विशाल देश भुजाएं खोल कर स्वागत करने को प्रस्तुत है।

आपके उद्देश्य को न जानकर, आपके हार्दिक भावों को न समझते हुये, दस्यु लोगों ने आप पर इतने अत्याचार किये। स्पष्ट रूप से और छिप कर, धर्म और न्याय का विचार छोड़ कर उन्होंने आप को नष्ट करने के प्रयत्न किये। युद्ध क्षेत्र को छोड़ कर उन्होंने इक्केदुक्के देवताओं पर आक्रमण आरम्भ किये। इसमें सफलता न होने पर निशाचरों का रूप धारण करके, रात्रि के अन्धकार का लाभ उठा कर अपने घृणित उद्देश्य को पूर्ण करने का यत्न किया, पर उसमें भी सफल न हो सके। इसलिये उन्होंने अब आपका पीछा छोड़ दिया है। वह अब "भूत" जाति हो चुके। अब उस

जाति के जो भी मनुष्य शेष रह गये हैं आप का अङ्ग बन गये हैं। उन्हें आप से अब द्वेष नहीं रहा। यह हर्ष का विषय है।

परन्तु इस उपजाऊ भूमि को पाकर, जिसमें इतने बड़े बड़े महानद और छोटी २ नदियां बह रही हैं, हां! उस शान्ति को प्राप्त करके जो धन धान्य सम्पन्न मनुष्य को मिल जाती है, आपको यह विस्मरण नहीं होना चाहिये कि प्रतिकूल शक्तियां सदैव के लिये नष्ट नहीं हो गईं। यदि आप उनकी ओर से नेत्र मूंद लेंगे तो असम्भव नहीं कि वे पुनः सिर उठा कर आप लोगों को दुख देने का कारण बनें। सदा की सतर्कता स्वतन्त्रता का मूल्य है।

विद्वानों ने, बुद्धिमानों ने, इस सतर्कता के कार्य के लिये कूट-नीति विद्या का निर्माण किया है। उनका कथन है कि जब संसार सोता है तो दण्ड जागता है। दण्ड ही है जो दुष्ट पुरुषों को पापों से हटाता है और सज्जनों को धर्म में प्रवृत्त करता है। दण्ड की विद्या का नाम "कूटनीति" है। आपके छोटे २ जाति समूह जो इस समय देश में चारों ओर फैल गये हैं, उन्हें किसी भावी शत्रु से रक्षित करने के लिये दण्डनीति को पूर्ण शक्ति से चलाने की आवश्यकता है। इस पर आपको भली प्रकार विचार करना चाहिये।"

यह शब्द थे, जो देव लोगों की विभिन्न जातियों के वृद्धों की एक सभा में मनु जी ने कहे। ये जातियां छोटे २ जनपदों (Republics) के रूप में देश में फैल रही थीं। होनहार, और धैर्यवान लोग जहां भी इच्छा करते, नवीन प्रदेशों की पृथ्वी को

सर करके धनधान्य से मालामाल हो रहे थे। देश में नदियों के तट पर विस्तृत वन पशुओं के चरने के लिये अत्यन्त उपयुक्त थे। इसलिये गो, वृषभ, महिष, अजा, उष्ट्र, हस्ति इत्यादि पशु सैंकड़ों नहीं सहस्रों से बढ़ कर लाखों की गणना में पाले जाने लगे थे। दुग्ध की नदियाँ वह रही थीं, उसका बेचना पाप समझा जाता था। आगन्तुक अतिथि की सेवा दुग्ध, घृत, फलों, सारांश प्रत्येक प्रकार के श्रेष्ठ पदार्थों से की जाती थी। अतिथि का किसी गृह से निराश हो कर लौटना किसी भारी आपत्ति का सूचक समझा जाता था।

देव लोग यह सब कुछ पाकर देवलोक को भूल चले थे। परन्तु मनु जी की दूरदर्शी दृष्टि कुछ और देख रही थी, उन्हें ज्ञात था के देव लोगों के इस देश में प्रवेश से इसके द्वार अन्य देशों के लिये खुल गये हैं। और यह बात किसी भी समय जाति के लिये भयदायक हो सकती है। इसलिये वह नवप्राप्त देश को प्रत्येक प्रकार से सुरक्षित देखना चाहते थे। इसी प्रयोजन के लिये आज की सभा एकत्रित की गई थी। मनुजी के भाषण के पश्चात् कैकेय लोगों के प्रतिनिधि ने कहा—"भगवान् मनु ने जो कुछ कथन किया, वह सर्वथा सत्य है। हम लोग अग्निपरीक्षा से लांघ कर इस देश को प्राप्त करने में सफल हुये हैं, जिस पर इस समय पर्यन्त किसी का भी अधिकार नहीं था, क्योंकि सृष्टि उत्पत्ति से लेकर इस समय तक किसी भी मनुष्य को यहाँ पहुंचने का साहस नहीं हुआ। यह केवल हमारे महापितर जी के ही भाग्य

में था कि पहिले पहल इस पर अपने चरण रक्खें और उसके चारों ओर भ्रमण करके उसे अपनी प्रिय जाति के लिये प्राप्त करके हमें आवाहन करें। यदि हम इस घर आई लक्ष्मी को अपनी निर्बलता अथवा किसी अन्य कारण से खो दें, तो इससे बढ़कर दुर्भाग्य और कोई न होगा। इसलिये आप आज्ञा दें, कि मैं महा-पितर जी से प्रार्थना करूँ, कि उन्होंने देश और जाति की रक्षा के लिये जो उपाय सोच रक्खे हैं, उन्हें आप लोगों के सन्मुख रक्खें।

सभाजन—(एक स्वर से) निश्चय, निश्चय।

सबके आग्रह पर भगवान् मनु ने कहा—"अल्प समय में नीति के समस्त अङ्गों पर कथन करना सुगम नहीं। यदि आपकी इच्छा होगी तो किसी और समय हम आप के प्रतिनिधियों के सन्मुख अपने समस्त विचारों को रख देंगे। हम ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब के धर्मों के सम्बन्ध में विचार किया है। ब्रह्मचारी गृहस्थी, वानप्रस्थी और सन्यासी को जो कुछ करना उचित है और जिस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये, ईश्वरीय ज्ञान वेद के आधार पर उस पर भी सोच रक्खा है। यदि आप के प्रतिनिधियों की इच्छा होगी तो उन विचारों पर वादविवाद करके परिणाम को लेखनीवद्ध कर लिया जायेगा। परन्तु इस समय सबसे प्रथम और सब से बड़ा प्रश्न देशरक्षा का है। उसके लिये मनुष्यों की आवश्यकता है। यह स्पष्ट है कि यदि समस्त जाति इसी कार्य में लगी रही, तो धनधान्य के उपार्जन का कार्य नहीं हो सकेगा

जिस के बिना किसी का भी जीवित रहना असम्भव है। इसलिये भला यही होगा कि सारी उपजातियां अपने में से चुने हुये युवक इस कार्य के लिये अलग कर दें, जो एक केन्द्रीय सेना का रूप धारण करके देश की रक्षा करें। तत्पश्चात् उस सेना के पालन-पोषण का प्रश्न आयेगा। उसके लिये धन की आवश्यकता है। उस का प्रबन्ध करना होगा। वह इस प्रकार हो सकता है कि देश-वासी अपने २ उपार्जित धन धान्य में से एक भाग इस कार्य के लिये अलग कर दें। फिर केन्द्र में आये हुये उस धन के हिसाब को रखने की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार अन्य केन्द्रीय कार्यों के प्रबन्ध के लिये विद्वानों को एकत्र करना होगा। इसी प्रकार अन्य अनेक कार्य ऐसे हैं, जिन के लिये विचार की आवश्यकता है। देश को संगठित करने के लिए भी विधान तैय्यार होना चाहिये। उसके लिये आप मननशील विद्वानों की उपसभाएँ नियुक्त कर दें। वह सभायें अपने विचार केन्द्रीय सभा के सामने रक्खें। केन्द्रीय सभा इस राष्ट्र के राजा का कार्य करे। राजा दंड नीति का प्रमुख रूप है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि राष्ट्र एक विराट पुरुष है। सेना उसकी बाहु हैं। धन और अर्थ उसका उदर है। राजा और विद्वत्-सभा उसका मस्तिष्क है। गुप्त-चर उसके नेत्र हैं। दण्ड उसका शस्त्र है। वह "दण्डधर है"।

महापितर की आज्ञा का पालन हुआ। बड़े २ विद्वानों ने ईश्वरीय ज्ञान वेद, और अपनी बुद्धि का आश्रय लेकर देश की प्रत्येक जाति और जाति के प्रत्येक व्यक्ति के धर्मों की सूची तैयार कर

के मनु जी के सामने उपस्थित की, और उनकी आज्ञानुसार सब अङ्गों पर वाद विवाद होकर "मानव धर्म सूत्र" लेख-बद्ध हुये। उन सूत्रों के आधार पर भविष्य में आधुनिक "मनुस्मृति" लिखी गई। वह सूत्र आज पर्यन्त देवजाति और उसकी सन्तान के पथ प्रदर्शक हैं।

देश की सब जातियों ने अपने धर्म से उपार्जित सम्पत्ति पर कर लगवाना स्वीकार किया। वह इस रीति से लगाया गया कि लाखों वर्ष बीतने पर भी आज प्रत्येक हिन्दू उसे देता हुआ यह अनुभव नहीं करता कि वह कर (Tax) है।

इस प्रकार प्राप्त धन से उन विद्वानों की जीविका का प्रबन्ध हुआ जिन्होंने प्रजा को विद्या पढ़ाने, यज्ञ कराने, रोगों को दूर करने और परोपकार के अन्य कार्यों को अपने सिर पर ले लिया। इसी प्रकार के कर से राष्ट्र का कोष भरपूर हो गया, और उससे सेना का भरण-पोषण हुआ। इन्हीं से जाति के लाभ के अन्य कार्य आरम्भ किये गये। कृषि, कलाकौशल इत्यादि को उन्नत किया गया। सरस्वती, दृषद्वती नदियों के अन्तरिम प्रदेश में अनेक विश्व-विद्यालय स्थापित किये गये, जहां देशों २ से मनुष्य विद्योपार्जन के लिये आने लगे। इस प्रकार जाति का दिया हुआ धन उसे ही लौटा दिया गया।

मनु मनुष्य जाति के उपकार के लिये नाना प्रकार के उपाय

सोचने लगे। श्रद्धा देवी इन समस्त कार्यों में उनकी सहायक थीं। अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरस, वामदेव आदि ऋषि और महर्षि वेद मन्त्रों को समझने और समझाने में लग गये। उनके और उनके शिष्यों के प्रयत्न से नित्य नये आविष्कार होने लगे। ब्रह्मावर्त्त प्रदेश हवन यज्ञ के धूम्र से सुगन्धित हो उठा। वेद के सन्देश को दूर २ के देशों में पहुंचाने की तैयारियां होने लगीं और समूचा देश आर्य्यावर्त्त के नाम से पुकारा जाने लगा।

अन्तिम शब्द

मैंने इस कथा को प्रथम मार्च सन् १६४६ को भगवान् मनु के वंशज लव जी के प्रिय नगर लवपुर में अपने विशाल गृह "प्रमोद भवन" के पुस्तकालय में बैठ कर आरम्भ किया था, और वहीं पर २ सितम्बर १६४६ को इसे समाप्त भी कर दिया था। परन्तु पुनर्अवलोकन में ज्ञात हुआ कि इसमें कई त्रुटियां हैं। इसलिये कई अध्याय नये लिखे। कई एक में काट-छांट की। फिर भी संतोष न हुआ, क्योंकि विषय ही ऐसा था। इसलिये वेदों और ब्राह्मण-ग्रन्थों का पुनः अध्ययन किया। पर "मेरे मन कुछ और है विधना के कुछ और" ठीक जैसे कि देवलोक में हिम वर्षा हुई थी जिसने उसे जल निमग्न कर दिया था, सहसा एक आंधी उठी और उसने पंचनद देश का नामोनिशान मिटा दिया। उसकी नदियों में बाढ़ नहीं आई। उसकी पृथ्वी भी जल के नीचे चली नहीं गई। परन्तु वह देश जिसे कभी "पंजाब" के नाम से पुकारा जाता था, अब भूमितल पर नहीं रहा। "लाहौर" अब भी है परन्तु 'लवपुर' नहीं रहा, न ही उसका वह भाग रहा, जिसे भगवान् कृष्ण जी के नाम पर एक नितान्त हिन्दू बस्ती के रूप में बसाया गया था और जिसमें मैंने "प्रमोद भवन" निर्माण किया था। हां न "कृष्ण नगर" है न ही "प्रमोद भवन"। वह सब स्वप्न हो गया। उस आंधी ने उस प्रदेश को, जिसमें मनु आदि महर्षियों ने साम गायन

किया, जहां पर वह प्रारम्भिक विधान बनाये गये जिनका अध्ययन करके जगत आज भी विस्मित है, जहां इन्द्रादि देवताओं ने असुरों और दस्यु लोगों को दास बनाया, और जो सदैव से भारत का द्वार माना जाता रहा था, उस प्रदेश को शायद सदैव के लिये आर्यावर्त्त से अलग करके एक विदेशी धर्म पर स्थापित राष्ट्र के समर्पण कर दिया, जो जगत में साम्प्रदायिक राज्य का एक नया उदाहरण है।

इस आंधी के झकोले मुझे इधर से उधर और उधर से इधर लिये फिरते रहे हैं। अभी तक भी कह नहीं सकता कि और कहां जाऊंगा। उन्हीं झकोलों के प्रभाव से संयुक्त प्रान्त के ज़िला बिजनौर के धामपुर नामी नगर में बैठ कर यह पंक्तियां लिख रहा हूं। जिस समय मैंने पुस्तक लिखना आरम्भ किया था मेरे पास अपना निज का विशाल पुस्तकालय था, जिसमें चुनी हुई सहस्रों पुस्तकें थीं। इसके अतिरिक्त लाहौर के समस्त बड़े २ पुस्तक-भण्डार और लाइब्रेरियां मेरे लिये खुली थीं। अपनी आर्थिक दशा भी बुरी न थी। पर आज क्या है ? मेरा अपना पुस्तकालय और वह सारी पुस्तकें जो इससे प्रथम लिख कर प्रकाशित कर चुका हूं, पाकिस्तान की भेंट हो गईं। वहां पर शायद वह अस्कंदरिया के पुस्तकालयों की भांति हमाम गर्म करने के काम में आई होंगी। इस स्थान पर जहां बैठा हूं न कोई उत्तम पुस्तकालय है न ही अन्य सहायता प्राप्त हो सकती है, न ही अनुसन्धान के लिये

धन है। इस कहानी से आगे वैवस्वत वंश (सूर्य वंश) और फिर इन्दु अथवा चन्द्र वंश का सिलसिला चलता है, और सत्य तो यह है कि देव आर्यों के नये देश का इतिहास इतना विस्तृत विषय है कि वर्षों में भी इसका वर्णन नहीं हो सकता। इसलिये विवश होकर इसेयहीं पर समाप्त कर रहा हूं। जीवन रहा, और पाठकों ने इच्छा प्रगट की, तथा अवस्था सुधरी, तो फिर सेवा में उपस्थित हूँगा।

१५ फरवरी १९४८

बसन्त पंचमी

—:❁:—

नोट—पुस्तक छपते समय (जून १९४९) लेखक देहली में है। पर भगवान ही जानें, इस चक्र का अन्त कहां होगा।